श्रीमद् देवचंद्र ग्रंथमाला पुष्प—२

श्रीमद् देवचन्द्र सज्झायमाला भाग—२

अष्ट प्रवचनमाता सज्झायसार्थ

सम्पादक

अगरचंद नाहटा

प्रकाशक :—

भंवरलाल नाहटा

व्यवस्थापक—श्रीमद् देवचन्द्र ग्रंथमाला

४ जगमोहन मल्लिक लेन,

कलकत्ता—७

श्रीमद् देवचन्द्र निर्वाण तिथि

भाद्रकृष्णा १५ सं० २०२०

मूल्य०-५० नये पैसे

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद् देवचंद ग्रंथमाला पुष्प—२

श्रीमद् देवचंद्र सज्झायमाला भाग---१

[अष्ट प्रवचनमाता सज्झायसार्थ]

सम्पादक

अगरचंद नाहटा

प्रकाशक :—

भंवरलाल नाहटा

व्यवस्थापक—श्रीमद् देवचन्द्र ग्रंथमाला

४ जगमोहन मल्लिक लेन,

कलकत्ता—७

भाद्रकृष्णा १५ सं० २०२०

मूल्य०-५० न० प०

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दो शब्द

श्रीमद् देवचन्द्र ग्रन्थमाला का द्वितीय पुष्प पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जारहा है। इस सज्झाय का गुजराती अनुवाद बहुत वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था। हिन्दी पाठकों को भी इस महत्वपूर्ण रचना का लाभ मिले, इस दृष्टि से श्री नेमीचन्द्र जैन से हिन्दी में भावार्थ लिखवाया गया। उसमें कुछ त्रुटियां रहजना भी संभव है। नित्य विनयमणि जीवन जैन लाइब्रेरी, कलकत्ता के, ग्रन्थों में से इस रचना की अर्थ सहित हस्तलिखित प्रति प्राप्त होने से उसको भी इस ग्रन्थ में प्रकाशित किया गया है।

उत्तराध्ययन सूत्र के २४वें अध्ययन से अष्ट प्रवचन माता विषयक २७ गाथाओं का अनुवाद व दिगम्बराचार्य शुभचन्द्र के ज्ञानार्णव से भी एतद्विषयक श्लोकों का अनुवाद देने के साथ साथ अन्त में परमयोगिराज श्री आनन्दघनजी महाराज कृत पाँच समिति की ढालें सद्गुरु शिरोमणि युगप्रवर श्री सहजानन्दजी महाराज द्वारा प्राप्त कर प्रकाशित की जा रही है।

आशा है जैन साधु- साध्वी इस रचना का विशेष मनोयोग से स्वाध्याय करके और श्रावक श्राविका गण भी इसे पढ़कर जैन-मुनि जीवन के रहस्य से अवगत होंगे।

थोड़े ही दिनों में दूसरा भाग व शांत सुधारस भी पाठकों के समक्ष उपस्थित किया जायगा।

श्री धरमचन्द्र जी गोलछा ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में १०१) रुपया देने की सूचना दी है, अतः आप धन्यवादार्ह हैं।

भंवरलाल नाहटा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्गीय गणिवर्य बुद्धिमुनिजी

-अगरचंद नाहटा

जैन धर्म के अनुसार सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र ही मोक्ष-मार्ग है, जो व्यक्ति अपने जीवन में इस रत्नत्रयी की जितने परिमाण में आराधना करता है वह उतना ही मोक्ष के समीप पहुंचता है, मानव-जीवन का उद्देश्य या चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना ही है, मनुष्य के सिवा कोई भी अन्य प्राणी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता, इसलिये मनुष्य जीवन को पाकर जो भी व्यक्ति उपरोक्त रत्न-त्रयी की आराधना में लग जाता है उसी का जीवन धन्य है, यद्यपि इस पंचम काल में इस क्षेत्र से सीधे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती फिर भी अनन्त काल के भव-भ्रमण को बहुत ही सीमित किया जा सकता है, यावत् साधना सही और उच्चस्तर की हो तो भवान्तर (दूसरे भव में) भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है। चाहिये संयमनिष्ठा और निरन्तर सम्यक्साधना। यहां ऐसे ही एक संयमनिष्ठ मुनि महाराज का परिचय दिया जा रहा है जिन्होंने अपने जीवन में रत्नत्रयी की आराधना बहुत ही अच्छे रूप में की है, कई व्यक्ति ज्ञान तो काफी प्राप्त कर लेते हैं पर ज्ञान का फल विरति है उसे प्राप्त नहीं कर पाते और जब तक ज्ञान के अनुसार क्रिया या चारित्र का विकास नहीं किया जाय वहां तक मोक्ष प्राप्त नहीं किया जा सकता-'ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः। गणिवर्य बुद्धिमुनिजी के जीवन में ज्ञान और चारित्र इन दोनों का अद्भुत सुमेल हो गया था यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है,

आपका जन्म जोधपुर प्रदेशान्तर्गत गांगाणी तीर्थ के समीपवर्ती बिलारे गांव में हुआ था। चौधरी (जाट) वंश में जन्म लेकर भी संयोगवश आपने जैन—दीक्षा ग्रहण की। आपके पिता का स्वर्गवास आप के बचपन में ही हो गया था और

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आपकी माता ने भी अपना अन्तिम समय जान कर इन्हें एक मठाधीश-महंत को सौंप दिया था, वहां रहते समय सुयोगवश पन्यास श्री केसरमुनिजी का सत्समागम आपको मिला और जैन मुनि की दीक्षा लेने की भावना जाग्रत हुई, पन्यासजी के साथ पैदल चलते हुये लूणी जंकशन के पास जब आप आये तो सं० १९६३ में ९ वर्ष की छोटी सी आयु में ही आप दीक्षित हो गये आपका जन्म-नाम नवल था, अब आपका दीक्षानाम बुद्धिमुनि रखा गया वास्तव में यह नाम पूर्ण सार्थक हुआ आपने अपनी बुद्धि का विकास करके ज्ञान और चारित्र की अद्भुत आराधना की। थोड़े वर्षों में ही आप अच्छे विद्वान् हो गये और अपने गुरुश्री को ज्ञानसेवा में सहयोग देने लगे ।

तत्कालीन आचार्य जिनयशःसूरिजी और अपने गुरू केसरमुनिजी के साथ सम्मेतशिखरजी की यात्रा करके आप महावीर निर्वाण-भूमि—पावापुरी में पधारे आचार्यश्री का चतुर्मास वहीं हुआ और ६१ उपवास करके वे वहीं स्वर्गवासी हो गये, तदनंतर अनेक स्थानों में विचरते हुये आप गुरुश्री के साथ सूरत पधारे, वहां गुरुश्री के अस्वस्थ होने पर आपने उनकी बहुत सेवा-सुश्रूषा की इसके फलस्वरूप वे स्वस्थ हो गये और बंबई जाकर चतुर्मास किया उसी चातुर्मास में कार्तिक शुक्ला ६ को पूज्य केसरमुनिजी का स्वर्गवास हो गया। करीब २० वर्ष तक आपने गुरुश्री की सेवा में रहकर ज्ञानवृद्धि और संयम और तप, जो मुनि जीवन के दो विशिष्ट गुण हैं, में आपने अपना जीवन लगा दिया, आभ्यंतर तप के ६ भेदों में वैयावृत्य सेवा में आपकी बड़ी रूचि थी, आपके गुरु श्री के भ्राता पूर्णमुनिजी के शरीर में एक भयंकर फोड़ा हो गया उससे मवाद निकलता था और उसमें कीड़े पड़ गये थे दुर्गन्ध के कारण कोई आदमी पास भी बैठ नहीं पाता था, पर आपने ६ महीनों तक अपने हाथों से उसे धोने मल्हम-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पट्टी करना आदि का काम सहर्ष किया। इससे पूर्ण मुनिजी को बहुत शाता पहुंची और स्वस्थ हो गये।

आगमों का अध्ययन करने के लिए आपने संपूर्ण आगमों का योगोद्वहन किया इसके बाद सं० १९९५ में सिद्धक्षेत्र पालीताना में आचार्य श्रीजिनरत्न-सूरिजी ने आपको गणिपद से विभूषित किया।

मारवाड़, गुजरात, कच्छ, सौराष्ट्र और पूर्व प्रदेश तक में आप निरंतर विचरते रहे कच्छ और मारवाड़ में तो आपने कई मंदिर-मूर्तियों एवं पादुकाओं की प्रतिष्ठा भी करवाई यथा जिनरत्नसूरिजी की आज्ञा से भुज में दादा जिनदत्त सूरिजी की मूर्ति एवं अन्य पादुकाओं की प्रतिष्ठा बड़ी धूमधाम से करवाई वहाँ से मारवाड़ के चूड़ा ग्राम में आकर जिन प्रतिमा, नूतन दादावाड़ी ओर जिन-दत्तसूरिजोको मूर्तिप्रतिष्ठा करवाई चूंडाचातुर्मासके समय ही आपको जिनरत्नसूरि जी के स्वर्गवास का समाचार मिला आचार्यश्री की अंतिम आज्ञानुसार आपने जिन ऋद्धिसूरिजी के शिष्य गुलाबमुनिजी की सेवा के लिए बंबई बिहार किया और उनको अंतिम समय तक अपने साथ रख कर उनकी खूब सेवा की, उनके साथ गिरनार, पालीताना आदि तीर्थों की यात्रा को इसी बीच उपाध्याय लब्धि मुनिजो का दर्शन एवं सेवा करने के लिये आप कच्छ पधारे और वहाँ मंजलग्राम में नये मंदिर और दादावाड़ी को प्रतिष्ठा उपाध्यायजी के सान्निध्य में करवाई, इसी तरह अंजार (कच्छ) के शांतिनाथ जिनालय के ध्वजादंड एवं गुरुमूर्त्ति आदि को प्रतिष्ठा करवाई। वहाँ से विचरते हुये पालीताना पधारे असाता वेदनीय के उदय से आप अस्वस्थ रहने लगे फिर भी ज्ञान और संयम की आराधना में निरंतर लगे रहते थे।

कदम्बगिरि के संघ में सम्मिलित होकर सौभागचन्द जी मेहता को आपने संघपति की माला पहनाई और तदनन्तर उपाध्यायजी की आज्ञानुसार अस्वस्थ

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

होते हुए भी भुजकच्छ के संभवनाथ जिनालय की अंजनशलाका और प्रतिष्ठा उपाध्याय जी के सान्निध्य में करवाई फिर पालीताना पधारे और सिद्धगिरि पर स्थित दादाजी के चरणपादुकाओं की प्रतिष्ठा और जिनदत्तसूरि सेवा संघ के अधिवेशन में सम्मिलित हुए व श्री गुलाबमुनिजी काफी दिनों से अस्वस्थ थे। आपने उनकी सेवा में कोई कसर नहीं रखी, पर उनकी आयुष्य की समाप्ति का अवसर आ चुका था। अतः सं० २०१७ वैसाख सुदी १० महावीर केवल-ज्ञान तिथि के दिन गुलाबमुनिजी स्वर्गस्थ हो गये।

आपका स्वास्थ्य पहले से ही नरम चल रहा था और काफी अशक्ति आ गई थी। तलहटी तक जाने में भी आप थकजाते थे। पर सं० २०१८ के मिगसर से स्वास्थ और भी गिरने लगा और वैद्यों के दवा से भी कोई फायदा नहीं हुआ तो आप को डोली में विहार करके हवा-पानी बदलने के लिए अन्यत्र चलने को कहा गया। पर आपने यही कहा कि मैं डोली में बैठकर कभी विहार नहीं करूँगा। फाल्गुन महीने से ज्वर भी काफी रहने लगा। और वैद्यों ने आपको श्रम करने का मना कर दिया। पर आप ज्वर में भी अपने अधूरे कामों को पूरा करने-लिखने आदि में लगे रहते थे। चिकित्सक को आपने यही उत्तर दिया कि यह तो मेरी रुचि का विषय है, लिखना बंद कर देने पर तो और भी बीमार पड़ जाऊँगा। वैद्यों की दवा से लाभ होता न देखकर आपसे डाक्टरी इलाज करने का अनुरोध किया गया, तो आपने कहा कि मैं कोई प्रवाही दवा-इन्जेक्शन-मिक्सचर आदि नहीं लूँगा। तुम लोग आग्रह करते हो तो फिर सूखी दवा ले सकता हूं। दो तीन महीने दवा ली भी; पर कोई फायदा नहीं हुआ। तब श्री प्रतापमल जी सेठिया और अचरतलाल शिवलाल ने बम्बई से एक कुशल वैद्य को भेजा। पर असाता वेदनीय कर्मोदय से कोई भी दवा लागू नहीं पड़ी। आप

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अपने शिष्यों को हित की शिक्षा देते रहते थे। शिष्यों ने कहा कि : ग उक्त सूत्र के गुजराती अनुवाद का मुद्रण अधूरा पड़ा है। उसे कौन पूरा करेगा ? प्रत्युत्तर में आपने कहा—इसकी चिन्ता मत करो, जहां तक वह पूरा नहीं होगा; मेरी मृत्यु नहीं होगी। आप का दृढ़ निश्चय और भविष्यवाणी सफल हुई और आपके स्वर्गवास के दो-तीन दिन पहले ही कल्पसूत्र छप कर आ गया और उसे दिखाने पर आपने उसे मस्तक से लगाया ऐसी आपकी अपूर्व ज्ञान भक्ति थी।

श्रावण सुदी पंचमी से आपकी तबियत और भी बिगड़ने लगी पर आप पूर्ण शाँति के साथ उत्तराध्ययन, पद्मावती सज्झाय, प्रभंजना व पंचभावना की सज्झाय आदि सुनते रहते थे। सप्तमी के दिन आपका शरीर ठंडा पड़ने लगा। उस समय भी आपने कहा—मुझे जल्दी प्रतिक्रमण कराओ। प्रतिक्रमण के बाद नवकार मन्त्र की अखण्ड धुन चालू हो गयी। सबसे क्षमापना कर ली। रात साढ़े तीन बजे आपने कहा मुझे बैठाओ ! पर एक मिनट से अधिक न बैठ सके और नवकार मन्त्र का स्मरण करते हुए श्रावण शुक्ला अष्टमी पार्श्वनाथ मोक्ष-कल्याणक के दिन स्वर्गवासी हो गये।

आप एक विरल विभूति थे। आपके चारित्र की प्रशंसा स्वगच्छ और परगच्छ के सभी लोग मुक्त कण्ठ से करते थे। ज्ञानोपसना भी आपकी निरन्तर चलती रहती थी। एक मिनट का समय भी व्यर्थ खोना आपको बहुत ही अखरता था। साध्वोचित्त क्रियाकलाप करने के अतिरिक्त जो भी समय बचता था; आप ज्ञान सेवा में ही लगाते थे। इसीलिए आपने कई ज्ञानभंडारों की सुव्यवस्था की, सूची बनाई। आप जो काम स्वयं कर सकते थे, दूसरों से नहीं करवाते थे ! श्रावक समाज का थोड़ा सा भी पैसा बरबाद न हो और साध्वाचार में तनिक भी दूषण

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

न लगे इसका आप पूर्ण ध्यान रखते थे। अनेक ग्रन्थों का सम्पादन एवं संशोधन बड़े परिश्रम पूर्वक आपने किया था। खरतरगच्छ गुर्वावली के हिंदी अनुवाद का संशोधन कार्य जब आपको सौंपा गया तब ग्रन्थ के प्रत्येक शब्द और भाव को ठीक से समझ कर पंक्ति पंक्ति का आपने संशोधन किया। आपके सम्पादित एवं संशोधित ग्रंथों में प्रश्नोत्तरमञ्जरी, पिंडविशुद्धि, नवतत्व संवेदन, चातुर्मासिक व्याख्यान पद्धति, प्रतिक्रमण हेतुगर्भ, कल्पसूत्र संस्कृत टीका, आत्मप्रबोध, पुष्प-माला लघुवृत्ति आदि प्राकृत-संस्कृत ग्रन्थों का तथा जिनकुशलसूरि, मणिधारी जिनचन्द्रसूरि, युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि आदि ग्रन्थों के गुजराती अनुवाद के संशोधन में आपने काफी श्रम किया। सूत्रकृतांग सूत्र भाग १-२ द्वादशपर्व कथा के अतिरिक्त जयसोमोपाध्याय के प्रश्नोत्तर चत्वारिंशत् शतक का सम्पादन एवं गुजराती अनुवाद बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ के सम्पादन के द्वारा तो आपने खरतरगच्छ की महान सेवा की है। आपने और भी कई छोटे-मोटे ग्रन्थों का सम्पादन एवं संशोधन नाम और यश की कामना रहित हो कर किया। ऐसे महान मुनिवर्य का अभाव बहुत ही खटकता है। श्री जयानन्दमुनि जी आदि आपके शिष्य भी आशा है, अपने गुरुदेव का अनुकरण करने में गच्छ एवं शासन की सेवा करने का प्रयत्न करेंगे।

स्वर्गीय गणिवर्य को श्रीमद् देवचन्द्र जी की रचनाओं के स्वाध्याय एवं प्रचार में विशेष रुचि थी। कई वर्ष पूर्व उन्होंने श्रीमद् देवचन्द्र जी की अप्रसिद्ध रचनाओं का संकलन करके एक पुस्तक प्रकाशित करवाई थी। प्रस्तुत अष्ट-प्रवचन माता सज्झाय को हिन्दी अनुवाद सहित उनकी पवित्र स्मृति में प्रकाशित करवाया जा रहा है क्योंकि इसमें मुनिजीवन के जिस रहस्य को श्रीमद् देवचन्द्र जी ने अपूर्व शैली में प्रकाशित किया है, पूज्य बुद्धिमुनि जी का जीवन बहुत कुछ इन्हीं आदर्शों से ओतप्रोत था।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीजिनाय नमः

आध्यात्म—रसिक पंडित प्रवर
श्री देवचन्दजी कृत
आठ प्रवचन माता का सज्झाय

(भावार्थ सहित)

दोहा-

सुकृत कल्पतरु श्रेणिनी, वर उत्तर कुरु भौम ।
अध्यातम रस शशि कला, श्री जिनवाणी नौमि...१

कठिन शब्दार्थ—सुकृत-शुभकार्य । कल्पतरु-मनवंछित फल देने वाला वृक्ष । श्रेणी—पंक्ति । वर—अच्छी । उत्तर कुरु भोम—उत्तर कुरु क्षेत्र । अध्यात्म—आत्म स्वरूप । शशिकला—चन्द्रमा की कला । नौमि—नमस्कार करता हूं ।

भावार्थ—साधारण वृक्षों की उत्पत्ति भी अच्छी धरती के बिना नहीं हो सकती। अतः इच्छित फल-दाता कल्पवृक्षों के लिये उत्तरकुरु क्षेत्र की जमीन ही उत्तम मानी गई है । यहां पर ग्रंथकर्त्ता आदि मंगल में श्री जिनवाणी को उत्तर-कुरुक्षेत्र के तुल्य बतला रहे हैं । जो कि कल्पवृक्ष से अधिक मनोवांछित फल देने की क्षमता-वाले सुकृत की जननी है । कल्पवृक्ष के विषय में यदि किसी को आस्था न भी हो, परन्तु सुकृत रूपी कल्पवृक्ष के मनोवांछित फल प्रदान करने में अनास्था का प्रश्न ही नहीं होता । एक ही उपमा से संतुष्ट न होकर इसे शशिकला से भी उपमित किया है। जैसे चन्द्रकिरणों से झरने वाला रस अमृत है, वैसे ही भगवद् वाणी से झरा हुआ अध्यात्म रस अवश्य अमृत है । इन गुणों वाली श्रीजिनवाणी को नमस्कार करने से अभेदोपचार से श्रीजिनेश्वरदेव को भी प्रणाम होजाता हैं ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दीपचंद पाठक प्रवर, पय वंदी अवदात।
सार श्रमण गुण भावना, गाइश प्रवचन मात ॥२॥

शब्दार्थ-पाठक—उपाध्याय । प्रवर—अच्छे । पय—चरण । वंदी—वंदना करके । अवदात—उज्ज्वल । श्रमण—साधु । गाइश—गाऊंगा ।

भावार्थ—जिन्होंने प्रभु तथा प्रभुवाणी की महिमा बतलाई है, उन गुरुदेवों की स्मृति व कृतज्ञता की सूचक है । अथवा व्यवहारोचित भी है । ग्रंथकर्ता स्व गुरू दीपचंद नामक पाठक (उपाध्याय) के पवित्र चरणोंमें नमस्कारकरके उत्तम मुनिजनों के गुणों की भावना रूप प्रवचन-माताओं का वर्णन-स्तवना करना-चाहते हैं ।

जननी पुत्र शुभंकरी-तेम ए पवयण माय।
चारित्र गुण गण वर्द्धनी-निर्मल शिवसुख दाय ॥३॥

शब्दार्थ-शुभंकरी—भला करने वाली । तेम ए—वैसे ही यह । पवयणमाय—प्रवचन माता । वर्द्धनी—बढ़ाने वाली । शिवसुख-दाय मोक्ष के सुख देने वाली ।

भावार्थ...जैसे माता पुत्र का हित करने वाली होती है । वैसे ही यह प्रवचन माता चारित्र रूपी पुत्र-रत्न की जननी, हितकारिणी, गुणसमूह को बढ़ाने वाली, और निर्मल मोक्ष की देने वाली है ।

भाव अयोगी करण रुचि-मुनिवर गुप्ति धरंत।
जइ गुप्ते न रही सके, तो समिते विचरंत ॥४॥

शब्दार्थ-अयोगी—योग रहित । करण रुचि—करने की इच्छा । जइ-यदि ।

भावार्थ...मन, वचन, काया के योगों से निवृत होने की रुचि वाले मुनि गुप्तियों को धारण करते हैं । अर्थात् तीनों योगों को अपने वश में रखते हैं । मन

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

संकल्प को शून्य बनाना, वाणी से मौन रहना तथा काया से हलन चलनादि क्रियाओं का त्यागना, गुप्तिस्वरूप उत्सर्ग मार्ग है। मुनि यदि इस उत्सर्ग मार्ग पर न चल सके, तब अपवाद स्वरूप पांच-समितियों में प्रवृति करे।

गुप्ति एक संवरमयी, उत्सर्गिक परिणाम।
संवर निर्जर समिति थी, अपवादे गुणधाम ॥५॥

शब्दार्थ-एक—एकांत रूप से। उत्सर्गिक—निश्चय मार्ग। अपवादे—व्यवहार में।

भावार्थ'''उपरोक्त कथन से कोई यह न समझ ले कि उत्सर्ग मार्ग तो उत्तम है और अपवाद मार्ग हीन है। इसलिये कवि दोनों की उत्तमता सिद्ध करते हुए कहते हैं, कि गुप्तियां केवल संवर-मयी हैं। ये नवीन कर्म बंध नहीं होने देतीं। क्योंकि कर्मबंध कषाय और योगोदय से होता है। अतः गुप्तिमार्ग उत्सर्गिक (निश्चयनय) परिणाम स्वरूपी हैं। अपवाद मार्ग भी गुणों का धाम है। यह भी स्वरूप से संवर और निर्जरामय है, तथा निश्चय का कारण है। सत् प्रवृत्तियों द्वारा निर्जरा होती है। असत् प्रवृत्तियों का निरोध समितियों का फलित होने से संवर हो ही गया।

द्रव्ये द्रव्यतः चरणता, भावे भाव चरित्त।
भाव दृष्टि द्रव्यतः क्रिया, करतां शिव संपत्ति—६

शब्दार्थ-द्रव्ये—द्रव्य से। द्रव्यतः चरणता—द्रव्य चारित्र। भावे—भाव से। भाव दृष्टि—आत्म स्वरूप की ओर लक्ष्य। द्रव्यतः क्रिया—आचार। शिव-संपत्ति—मोक्ष रूपी लक्ष्मी।

भावार्थ...शुद्ध अन्तरात्मा में रमणता को भाव से (निश्चय से) भाव चारित्र कहते है। शुद्ध आत्मस्वरूप के उपयोग सहित गुप्ति-निवृत्ति रूप क्रिया; एवं

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यकतानुसार आहार निहार विहार में समिति रूप किया करते हुए अपने लक्ष्य स्थान-सुख धाम-मोक्ष को प्राप्त करते है।

चाहे समिति हो चाहे गुप्ति, किसी भी क्रिया के करने से पहले श्रमण को उचित है कि वह अपने आत्मा को निरखे-पहचाने। यदि द्रव्य से अर्थात् भावविना कोई क्रिया कर भी ली, तो वह द्रव्य-क्रिया कहलायेगी। कहा है कि "अणुव ओगोदव्वं" अर्थात् आत्म उपयोग शून्य क्रिया को द्रव्य कहा जाय। आत्म उपयोग सहित पाला हुआ चारित्र भाव-चारित्र है। जैसे समिति और गुप्ति, उत्सर्ग और अपवाद साथ-साथ चलते हैं। वैसे ही भाव (निश्चय) को दृष्टि में रखते हुए व्यवहार चारित्र का पालन करने से शिव संपत्ति की प्राप्ति बतलाई है। द्रव्य और भाव तथा निश्चय और व्यवहार दोनों की आवश्यक्ता है। —६

आतम गुण--प्रागूभाव थी, जे साधक परिणाम।
समिति गुप्ति ते जिन कहे,साध्य सिद्धि शिव ठाम—७

शब्दार्थ-प्रागूभाव थी—प्रगट होने से। साधक—साधना करनेवाला आत्मा। साध्य-मोक्ष।

भावार्थ'''साधना किसलिये की जाती है अर्थात् साध्य क्या है ? उसकी प्राप्ति में कौन-कौन से साधन काम में लिये जाते हैं और साधक किस कोटि का है। इन तीनों की शुद्धता ही मोक्ष का फल दे सकती है। मोक्ष साध्य है, समिति गुप्ति साधन है, और साधक मुमुक्षु आत्मा है।

आत्म गुण प्रगट करने वाले (होने से) साधक के परिणामों को समिति-गुप्ति कहा जाता है। उससे साध्य-सिद्धि अर्थात् शिव स्थान मिलता है।

शुद्धात्म बोध सहित साधक का ग शुद्ध उपयोग स्वरूप परिणाम को निवृति-गुप्ति, तथा आवश्यकता -पड़ने पर आत्म प्रतोतिसहजयणायुक्त प्रवृति को समिति (सर्वज्ञ) कहते है, इससे साध्य की सिद्धि होती है, वही मोक्ष है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

निश्चय करण रुचि थई, समिति गुप्ति धरी साध ।
परम अहिंसक भाव थी, आराधे निरुपाधि॥८॥

शब्दार्थ-निश्चय करण रुचि—निश्चय नय से सिद्धि करने की रुचि । निरुपाधि—उपाधि-रहित ।

भावार्थ--निश्चय से साध्य की सिद्धि करनेके इच्छुक मुनि, समिति एवं गुप्तिको धारण करे और उत्कृष्ट अहिंसक भावोंसे निरुपाधि (उपाधि रहित) भावको आराधे। क्योंकि पुद्गलों की आसक्ति और विभाव-दशा ही वास्तव में आत्मा की हिंसा है । समता की प्राप्ति और आत्मानन्द ही अहिंसा का परम शुद्ध स्वरूप है ।

परम महोदय साधवा, जेह थया उजमाल ।
श्रमण भिक्षु माहण यति, गाउं तस गुणमाल—९

शब्दार्थ--परम महोदय—मोक्ष । जेह—जो । उजमाल—उद्यमशील । तस—उसकी । गुणमाल—गुणों की माला ।

भावार्थ--परम महोदय अर्थात् मोक्ष की साधना करने के लिये जो उद्यमशील हैं, ऐसे श्रमण, भिक्षु, माहण, यति, आदि की गुणमाला गाऊंगा । तपस्या करने में श्रम करने वाला श्रमण, शुद्ध भिक्षा लेने वाला भिक्षु, किसी भी प्राणी को मत हणों, मत हणो, का उपदेश देने वाले और स्वयं छकाय के जीवों की दया पालने वाले माहण, उठना, बैठना, बोलना, चलना, आदि क्रियायें संयम (यतना) पूर्वक करनेवाला इन्द्रियजयी यती कहलाता है । भावार्थमें सारेनाम याविशेषण एक हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ढाल १ पहली 'ईर्या समिति' की

" प्रथम गोवालिया तणे भवे जी " ए देशी...

प्रथम अहिंसक व्रत तणी जीरे, उत्तम भावना एह ।
संवर कारण उपदिशि जी रे, समता रस गुण गेह ।

मुनीश्वर ! इरियासमिति संभार ।
आश्रव कर तनु योगनी जी रे, दुष्ट चपलता वार । मुनीश्वर—१

शब्दार्थ...एह=यह । उपदिशी=कही । गुणगेह=गुणों का घर । संभार=संभालो । आश्रव कर=पुण्य या पाप का बंध करने वाला । तनु योग=काया योग। चपलता=चंचलता । वार=हटा ।

भावार्थ—(गुण अवगुण के स्वरूप का प्रतिपादन और गुण ग्रहणव करने का आदेश तथा अवगुण को छोड़ने का उपदेश एक कुशल कवि का परिचय देता है ।) इर्या समिति, प्रथम-अहिंसा-महाव्रतकी उत्तम भावना है और संवरका कारण है । इसलिये समता-रस रूपी गुणों के आगर ! हे मुनीश्वर ! इर्यासमिति की साधना करो । काय योग की चपलता को दुष्ट आश्रवका कारण समझकर उसका निवारण करो—१

काय गुप्ति उत्सर्गनीजी रे, प्रथम समिति अपवाद ।
इरिया ते जे चालबुं जी रे, धरी आगम विधिवाद-२ मु०

शब्दार्थ...इरिया=पहली समिति का नाम । चालबुं=चलना । धरी=धारण करके । आगम विधिवाद=शास्त्रों की आज्ञा ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ...काया गुप्ति उत्सर्ग मार्ग है, और ईर्या समिति, काया गुप्तिका अपवाद मार्ग है। आगमोक्त विधि विधानों का पालन करते हुये चलने का नाम ईर्या समिति है। जैसे कि द्रव्य से ईर्या समिति क्षेत्र, से साढ़े तीन हाथ की लम्बाई तक भूमिगत दृष्टि रख कर चलना, काल से दिन दिन में और भाव से पांच इन्द्रियों के विषयों और पांच प्रकार की स्वाध्याय की वर्जना करके चलना विधि मार्ग है।

ज्ञान ध्यान सज्झायमां जी रे, स्थिर बैठा मुनिराय।
शाने चपलपणुं करे जी रे, अनुभव रस सुख राय-३ मु०

शब्दार्थ...ज्ञान=तत्त्वचिंतन। ध्यान=चित्त की एकाग्रता। सज्झाय=स्वाध्याय, शाने=किस लिये। अनुभव रस=आत्मिक आनंद।

भावार्थ--ज़बकि ज्ञानो(तत्त्व चिंतन), ध्यान (चित्त की एकाग्रता), स्वाध्याय, में स्थिर बैठे हुए मुनियों को अनुभवरस का वह सुख मिलता है, जो कि चक्रवर्त्तियों को भी सुलभ नहां है। तब ऐसे मुनियों को खाना, पीना, उठना, बैठना, जाना, आना आदि क्रियायें करने की क्या आवश्कता है? इन सब कार्यों में तो योगों की चपलता रही हुई है। - ३

मुनि उठे वसही थकी जीरे, पामी कारण चार।
वजिनवंदन,(१)गामांतरे,(२),जोरे, के आहार(३),निहार(४)-४मु०

शब्दार्थ...वसही=स्थान। पामी=पा करके। गामांतरे=एक ग्राम से दूसरे गाम। आहार=भोजन। निहार=मलत्याग-शौचादि।

भावार्थ····"कारण-मंतरा मंदोपि न प्रवर्त्तते" अर्थात् प्रयोजन के बिना मूर्ख भी प्रवृत्त नहीं होता! मुनि तो विशेष योग्यता वाले होते हैं, अतः उनके उपाश्रय से बाहर जाने के अत्यन्त उपयोगी चार कारण बतलाये हैं। १ जिनवन्दन,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

२ विहार, ३ आहार और ४ निहार। उनकी उपयोगिता व आवश्यकता क्रमशः आगे की गाथाओं में बतलाई जायेगी—

परम चरण संवर धरु जीरे, सर्व जाण जिन दीठ
शुचि समता रुचि उपजे जीरे, तेणे मुनिने इट्ठ-५ मु० मु०

शब्दार्थ...परम = उत्कृष्ट। चरण = साधुपना। संवरधरु = संवर को धारण करने वाले। सर्वजाण = सर्वज्ञ। दीठ = देखने से। शुचि = पवित्र। समता रुचि = समभाव की इच्छा। तेणे = इसलिये। इट्ठ = इष्ट-प्रिय-करने लायक।

भावार्थ...जिन वंदन व मन्दिरों में जाकर वीतराग मूर्ति के दर्शन क्यों करना चाहिये? उसका प्रयोजन एवं फल बतलाते हुए कहा गया है कि मुनि बनने का उद्देश्य होता है, वीतराग पद पाना। इसलिये वीतराग पद पाये हुये श्री जिनेश्वर देव को वन्दन करने के लिये मुनि चैत्य (देहरासर) में जाते हैं। संवर धारक, परम चरण (यथाख्यात चारित्र) वाले, सर्वज्ञ श्री जिनेश्वर देव के दर्शन से मुनि को पवित्र समता की रुचि उत्पन्न होती है। शुचि समता का अर्थ है। — अकषाय दशा (समभाव) जिससे अहंकार और ममकार वृत्ति का उच्छेद होता है। अथवा शुचि समता का अर्थ है—प्राणीमात्र को आत्मवत् समझना। तथा तीसरा अर्थ है-अपने को उच्च और अन्य किसी को हीन मानने की भावना का समाप्त होना। चौथा अर्थ है–अपनी आत्मा को संग्रह नय की दृष्टि से जिनेश्वर देवके समान समझना। प्रभु दर्शन करते हुए दो क्षण के लिये तो मुनि अपनी वैभाविक दशा को भूलकर स्वभाव-परक हो जाता है। मन से सोचता है कि यह वैकारिक दशा संयोग और कर्मजन्य है। स्वरुपतः तो आत्मा अपने आप में स्फटिक-रत्न के तुल्य सदा स्वच्छ ही है। अतः मुझे चाहिये कि अनंत वीर्योल्लास से इन कर्म बंधनों को तोडकर जिनेश्वर की तरह निराबाध सुखी बन जाऊं। इसलिये मुनि को जिनवंदन करने के लिये जाना इष्ट है-५

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

राग वधे स्थिर भाव थी जीरे, ज्ञान बिना प्रमाद ।
वीतरागता ईहता जीरे, विचरे मुनि साल्हाद —६ मु० मु०

शब्दार्थ...राग=मोह । स्थिर भाव थी=एक जगहरहने से । इहता=चाहते हुये । साल्हाद=खुशी से ।

भावार्थ...स्थिर आसन से उठने या निवास स्थान, उपाश्रयसे बाहर जाने का दूसरा कारण 'विहार' बतलाया है । मुनियों के लिये यह उचित हैं किवे एकगांवसे दूसरे गांव विहार करते रहें । यदि वे शास्त्रोक्त नवकल्पी विहार के नियम का उल्लंघन करके एक ही गांव में निवास बना लेते हैं तो क्षेत्र और श्रावकों के साथ राग भाव बढ़ता है तथा ज्ञानाभ्यास के बिना प्रमाद की वृद्धि होती है । अतः वीतरागता के अभिलाषी मुनि हर्ष सहित विहार करते रहते हैं ।—६

एह शरीर भवमूल छैजीरे, तसु पोषक आहार ।
जाव अयोगी नवो हुये जीरे, ताव अनादि आहार—७ मु० मु०

शब्दार्थ...भवमूल=जन्म का कारण । पोषक=पोसने वाला । जाव=अयोगी—योग रहित जबतक । ताव=तब तक । अनादि=सदा से ।

भावार्थ—तीसरा कारण आहार है । अर्थात् आहार लानेके लियेस्वाध्यायादि को छोड़कर उपाश्रय से बाहर जाना पड़ता है । क्योंकि जब तक शरीर हैं, तबतक आहार की आवश्यकता रहेगी । आहार तीन प्रकार का है ओज आहार, लोम आहार और कवल आहार । अपर्याप्त अवस्था में गर्भ में उत्पन्न होते ही प्रथम समय जो चुक्र और शोणित मिश्र आहार लिया जाता है, वह ओज आहार है । पर्याप्त होने के बाद रोमों द्वारा जो आहार प्रतिक्षण लिया जा रहा है, उसे लोम आहार कहते हैं । ये दोनों प्रकार के आहार देवता नारकी तथा समस्त स्थावर जीवों को होता है । तीसरा कवल आहार है, जो मुख द्वारा किया

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जाता है। ओज-लोभ-और कवल ये तीनों ही आहार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय मनुष्य और तिर्यञ्च को होते हैं। यह जीव अयोगी न बन जाय तब तक आहार लेता ही रहता है। अपवाद इतना सा है कि मृत्यु के पश्चात् परभव में जाते समय आत्मा यदि वक्रगति से जाये तो अधिक से अधिक तीन समय तक अनाहारिक रह जाता है। अथवा केवली समुद्घात के आठ समयों में से चौथा, पांचवाँ, छठा ये तीन समय अणाहारिक अवस्था के होते हैं। (सिद्ध भगवान तो अशरीरी होने से सदा अनाहारी ही है)। इन अपवादों को छोड़कर किसी भी स्थिति में आहार के बिना नहीं रहा जा सकता। यह शरीर ही संसार का मूल है। यह जानते हुए भी जब तक शरीर है उसे बचाये रखने के लिये आहार देना आवश्यक होता है क्योंकि संयम आराधना भी इसी शरीर के द्वारा ही होता है। साधक को अशरीरी बनने का ध्येय लेकर चलना हे। वह तभी हो सकता है जबकि आहार ग्रहण करने में अलोलुपता और शरीर पर अममत्व रहे। -७

कवल आहारे निहार छे जीरे, एह अंग व्यवहार।
धन्य अतनु परमातमा जीरे, जिहां निश्चलता सार—८मु० मु०

शब्दार्थ...कवल-ग्रास। अंग=शरीर। व्यवहार=रीत। अतनु=शरीर रहित।

भावार्थ...मुनि के उठने व चलने रूप प्रवृति का चौथा कारण निहार को बतलाया है क्योंकि कवल आहार करने वालों के लिये यह प्रकृति सिद्ध नियम है, कि निहार (मल-त्याग) करना ही पड़ेगा। इसलिये मुनि अशरीरी सिद्ध-भगवान) परमातमा की निश्चलता को धन्य समझता हुआ उसकी भावना भाता है!

Jain Educationa International　For Personal and Private Use Only　www.jainelibrary.org

पर परिणति कृति चपलता जी रे, केम छूटशे एह।
एम विचारी कारणे जी रे, करे गौचरी तेह ॥६॥ मु० मु०

शब्दार्थ...पर परिणति कृति चपलता=कर्मों द्वारा की हुई चंचलता। केम=कैसे। छूटशे=छूटेगी। एम=ऐसे। विचारी=विचार करके। कारणे=क्षुधावेदनीय के उदय होने से। गौचरी--भिक्षा।

भावार्थ...मुनि विचार करे कि पुद्गलोंकी परिणति से होने वाली मेरी मानसिक चञ्चलता तथा कायिक चपलता कब छूटेगी? इससे उसकी मोक्ष के प्रति उत्कट अभिलाषा सूचित होती है। मुनिके लिये आहारादि करते समय रागभाव तो त्याज्य है ही, परन्तु मुनि तो चाहता है कि आहार ही न करना पड़े, ऐसी अवस्था प्राप्त हो वैसे अवस्थाकी प्रतीक्षा मेंकेवल क्षुधा निवृत्तिके लिये और संयम तथा मुक्ति के साधन भूत शरीर-निर्वाह के लिये गौचरी करे। देह रक्षा के लिये आहार लेना पड़ता है, यह विचार करके वह गोचरी के लिये जावे, राग भाव से नहीं।

क्षमावन्त दयालुआजी रे, निस्पृह तनु निराग।
निर्विषयी गजगति परे जी रे, विचरे ते महाभाग॥१०॥मु० मु०

शब्दार्थ...निस्पृह=अभिलाषा रहित। निराग=मोह रहित। निर्विषयी=विषयों से रहित। गजगति=हाथी की चाल की तरह मस्त, धीरे धीरे महाभाग=महाभाग्य शाली।

भावार्थ—ऐसे उत्कृष्ट भावना वाले मुनियों का प्राथमिक धर्म क्षमा है। परीषहोंको समभाव से सहन करने का नाम तो क्षमा है ही, किन्तु अपराधियों के प्रति भी मानसिक क्रोध उत्पन्न न होने देना, उत्कृष्ट क्षमा है। हृदय में छःकाय के जीवों के प्रति दया भाव है, ऐसे क्षमावन्त और दयालु मुनि अपने शरीरपर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भी निस्पृह और निराग रहते हुए विचरते हैं। वे विषय तथा विकारोंसे रहित होकर मस्त हस्ती की तरह विचरने वाले मुनि, महा भाग्यशाली हैं ॥१०॥

परमानन्द रस अनुभवी जो रे, निज गुण रमता धीर।
'देवचन्द्र' मुनि वांदतां जीरे, लहिये भवजल तीर ॥११॥मु०

शब्दार्थ...परमानंद= उत्कृष्ट आनंद। अनुभवी= अनुभव करके। निजगुण= आत्मा के गुण। लहिये= पाइये। भवजल तीर= संसार का किनारा।

भावार्थ--पौद्गलिक पदार्थोंकी प्राप्ति और उनके सेवनसे जो सुख है, वह भी दुख परिणामी होने के नाते तुच्छ, क्षणिक और बाह्यानन्द है! आत्मिक गुणों में रमण करना ही परम-आनन्द है। उस परमानन्द रस का अनुभव करते हुए धीर पुरुष संसार सागर का किनारा पाते हैं। ऐसे सत्पुरुषों को श्री देवचन्द्रजी वन्दना करते हैं ॥११॥

शुद्धात्म स्वरूप के ध्यान में रसानन्द लेने वाले अनुभवी मुनि अपने आत्म गुणों में ही रमते हुए स्थिर रहते हैं ऐसे मुनियों को वन्दन करने वाले श्रद्धालु जन भी संसार सागर का किनारा पा जाते हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ढाल—दूसरी "भाषा समिति" की

"स्वामी सीमंधर वीनति सांभलो मांहरी देव" ॥ एदेशी ॥

साधुजी समिति बीजी आदरो, वचन निर्दोष प्रकाश रे।
गुप्ति उत्सर्ग नो समिति ते, मार्ग अपवाद सुविलास रे॥सा१॥

शब्दार्थ...बीजी=दूसरी। निर्दोष=दोष रहित। प्रकाश=बोलो। गुप्ति=वचन गुप्ति। सुविलास=अच्छा।

भावार्थ--साधुओ! दूसरी भाषा समिति धारण करो। निर्दोष वचन बोलो। उत्सर्ग मार्ग में जो वचन गुप्ति कही है, उसीका अपवाद यह भाषा समिति है ॥१॥

भावना बीय महाव्रत तणी, जिनभणी सत्यता मूल रे।
भाव अहिंसकता वधे, सर्व संवर अनुकूल रे॥ साधु० ॥२॥

शब्दार्थ...बोय=दूसरे। तणी=की। भणी=कही। बधै=बढे।

भावार्थ—यह भाषा समिति दूसरे महाव्रत की भावना है। जिनेश्वरोंने उसे सचाई का मूल बतलाया है। इससे सर्व संवरको प्राप्त करवाने वाली अहिंसकता बढ़ती है, ऐसा श्री जिनेश्वर देव ने कहा है! अर्थात् मुनि सत्य वचन ही बोले और वह भी अहिंसा एवं संवरको बढ़ाने वाला ही हो ॥२॥

मौनधारी मुनि नवी वदे, वचन जे आश्रव गेह रे।
आचरण ज्ञान ने ध्यान नो, साधक उपदिशे तेह रे ॥३॥सा०

शब्दार्थ...नवी=नहीं। वदे=बोले। आश्रवगेह=कर्मों का घर। उपदिशे=बतलाये। तेह=वह।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ--मुनि आश्रव का गेह अर्थात् पापकारिणी; छेदकारिणी, भेदकारिणी, पीड़ाकारिणी, मर्म प्रकाशकारिणी, वाणी कभी न बोले। इसके उपरान्त ऐसी सच्ची बात भी न कहे, जिससे किसी को आघात पहुचे। श्री दशवैकालिक सूत्र के सातवें अध्ययन में कहा है कि "सच्चा वि सा न वत्तव्वा,जओ पावस्स आगमो" तथा "तहेव काणं काणित्ति तेणं चोरित्ति नो वए" अर्थात् जिससे पाप का आगमन हो, वह सच भी न बोले। जैसे–चोर को ओ चोर; काणो को ओ बे काणे ! कह कर न बोले। वह जो भी कुछ बोले, वह ज्ञान ध्यानके आचरणकरनेका उपदेश देता हुआ बोले और उसमें भी मधुरता,निपुणता, अल्पता,निरवद्यता,निरहङ्कारिता और अतुच्छता रही हुई हों। वह भी योग्यायोग्यकी परीक्षा करके उचित समय पर व धर्मोपदेश देना अच्छा है ॥३॥

उदित पर्याप्ति जे वचन नी, ते करी श्रुत अनुसार रे।
बोध प्राग्भाव सज्झाय थी, वलि करे जगत उपकार रे॥४॥

शब्दार्थ...उदित=उदय में आई हुई। पर्याप्ति=पौद्गलिक रचना। श्रुत=ज्ञान। प्राग् भाव=प्रगटपना वली=और।

भावार्थ–नाम कर्म जन्य भाषा पर्याप्ति द्वारा जो कर्म इकट्ठे किये हुए हैं। उनके उदय से जो भाषा के पुद्गल ग्रहण होते हैं,उन्हें श्रुत के अनुसार बना करके मुनि ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त ज्ञान द्वारा जगत का उपकार करे। स्वाध्याय द्वारा ज्ञान वृद्धि करने के लिये और अन्य जीवोंके कल्याणार्थ के लिये उपदेश-व्याख्यान के लिये ही मुनि बोले ॥४॥

योग जे आश्रव पद हतो, ते कर्यो निर्जरा रूप रे।
लोह थी कांचनमुनिकरे,साधतासाध्य चिदरूपरे॥५॥मा०सा०

शब्दार्थ...आश्रव पद=पुण्य पाप के बंध का स्थान। हतो=था। साधता=साधतेहुये। साध्य=मोक्ष। चिद्रूप=ज्ञान स्वरूप।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ—योग पांचवां आश्रव है। मनो वर्गणा-वचन वर्गणा और काय वर्गणा के पुद्गलों का जीव के साथ संयोग होने का नाम योग है। योग का सीधा अर्थ है, आत्म प्रदेशों की चञ्चलता। जिन योगों के साथ मोहजनित प्रवृत्ति हो वे सावद्य और मोहरहित प्रवृत्ति हो, वे निर्वद्य कहलाते हैं। मुनियों ने कर्म बन्ध के कारण रूप योगाश्रव को निर्जरा का निमित्त कारण बना दिया है। जैसे पारस मणि के स्पर्श से लोहा स्वर्ण बन जाता है। वैसे ही चिद्रूप साध्य की साधना करते हुए मुनियों ने योगों को कर्म क्षय का निमित्त बनाया है ॥५॥

चलना फिरना एवं बोलना आश्रव रूप योगप्रवृत्ति है पर मुनिने इस योग प्रवृत्ति को निर्जरा का कारण बना दिया। जिस योग प्रवृत्तिसे कर्मबन्ध हो, वह मुनि नहीं करता। सम्यक्त्वी की क्रियायें निर्जरा रूप है।

साधु निज वीर्य थी पर तणो, नवी करे ग्रहण ने त्याग रे।
ते भणी वचन गुप्ते रहे, एह उत्सर्ग मुनि मार्ग रे —६सा०'सा०

शब्दार्थ...निज वीर्य थी =आत्म शक्ति से। परतणो=पुद्गलोंका। तेभणी-इसलिये

भावार्थ...सारे द्रव्य स्वतंत्र हैं। चेतन में अचेतनता की और अचेतन में चेतनता की क्रिया न तो हुई, न होती हैं। इस निश्चय से साधु अपने आत्मिक वीर्य द्वारा आत्मिक-गुणों का ही ग्रहण करता है। परन्तु परभाव अर्थात् भाषावर्गणा के पुद्गलों का ग्रहण और त्याग नहीं करता है। भाषा का व्यवहार-वचन प्रवृति आत्मा का स्वभाव नहीं हैं वह तो पुदगल एवं कर्मजन्य है इसलिये मुनि वचन-गुप्ति से रहे, मौन रहे। यह उत्सर्ग मार्ग-मुनियों का मार्ग है।

आत्म हित परहित कारणे, आदरे पंच सज्झाय रे।
भण असन वसनादिका, आश्रये सर्व अवद्यायरे-७सा० सा०

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ...कारणे--वास्ते । आदरे=करे अशन–आहार । वसना दिका–वस्त्रादिक ।

भावार्थ'''एक ओर निश्चय, दूसरी ओर व्यवहार,एक ओर उत्सर्ग दूसरी ओर अपवाद को साथ-साथ लेकर चलने नाम ही जैन दर्शन विधिमार्ग का है । वचनगुप्ति की जहाँ महिमा है, वहाँ भाषा समिति का स्थान कौन सा कम है ! साधक को उत्सर्ग के साथ अपवाद का अवलंबन अनिवार्यता से लेना पड़ा है, और लेना पड़ेगा । इसलिये मुनि भाषा समिति द्वारा अपने ज्ञान वृद्धि के लिए पांच प्रकार की स्वाध्यायकरे । इससे स्वहित और परहित दोनों है । क्योंकि धर्मोपदेश द्वारा अनेक जोवात्मा सन्मार्गी बने है,; बनते हैं, ।

स्वाध्याय का कार्य स्वास्थ्य पर निर्भर है,स्वास्थ्य का संबंध सात्विक आहार से है । इन पारंपरिक कारणों से आहार; वस्त्र, पात्र, पुस्तक, आदि उचित उपकरण (साधन) लेने का नाम गुप्तिरूप उत्सर्ग का समिति रूप अपवाद मार्ग है । —७

जिनगुण स्तवन निज तत्व ने, जोयवा करे अविरोध रे ।
देशना भव्य प्रतिबोधवा, वायणा करण निज बोधरे -८स०स०

शब्दार्थ...निजतत्व ने=आत्मस्वरूप को । जोयवा=देखने के लिये । अविरोध=समान । देशना=व्याख्यान । भव्य=मोक्ष के योग्य जोव । प्रतिबोधवा=समझाने के लिये । वायणा=वांचन । निज बोध=अपने आप के लिये ज्ञान ।

भावार्थ...जिनेश्वर देव की स्तवना करते समय मुनि अपनी आत्मा को जिनेश्वर देव की समानता में रख कर सोचे, कि ये जिनेश्वर देव वाले गुण मेरे में भी हैं या नहीं ? हैं तो प्रगट हैं या अप्रगट । अप्रगट हैं तो आवरण कौन से हैं । आवरण हैं ,,तो वे दूर हो सकते हैं या नहीं । हो सकते हैं, तो कौन से

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मार्ग से। इन विकल्पों द्वारा अपने आपको पिछान कर मुनि ऐसा उद्यम करे कि जिससे आत्मगुण प्रगट हो जायँ। अतः निज बोध के लिये वाँचन करे। और जो ज्ञान प्राप्त हो, उसका परहित में उपयोग करने के लिये धर्मकथा किया करे—८

नय गम भंग निक्षेप थो, स्वहित स्याद्वाद युत वाणि रे।
सोल दस चार गुण सुं मली, कहे अनुयोग सुपहाण रे-९ सा०

शब्दार्थ...नय=वस्तु को जानने का तरीका। गम=वस्तु के किसी एक धर्म का विवेचन। भंग=प्रकार। निक्षेप--रचना-स्थापना। स्याद्वाद--कथंचित् सापेक्ष कथन। अनुयोग=व्याख्यान। सुपहाण=सुप्रधान-श्रेष्ठ।

भावार्थ...व्याख्याता मुनि की वाणी नय,१ गम,२ भंग, ३ निक्षेप४, और स्याद्वाद ५ से भरी हुई, तथा सोलह, ६ दश७ चार, ८ गुणों वाली होने से व्याख्यान श्रेष्ठ होता है—९

टिप्पणी--

(१) नय सात हैं। नैगम-संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्र-शब्द-समभिरूढ और एवम्भूत। इन में प्रथम तीन नय व्यवहार और अंतिम चार निश्चय नय कहलाते हैं। तथा द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक भी कहे जाते हैं। यदि वक्ता एक नय से बोलता हुआ अन्य नयों को अपेक्षित रखता है, तब तो वे नय है, नहीं तो नया-भास हो जाता है।

(२) गम—वस्तु के अनंत धर्मों में से किसी एक गुण या पर्याय का आंशिक विवेचन करने का नाम गम है।

(३) भंग—प्रतिपादन करने के प्रकार को भंग कहते हैं। जैसे त्रिभंगी—उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य। चौभंगी-क्रोध-मान-माया और लोभ। सप्तभंगी—स्यात् अस्ति

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

नास्ति आदि निम्नोक्त ७ भंग। (४) निक्षेपः-तत्त्व की स्थापना करने के प्रकार का नाम निक्षेप है। ये चार हैं १ नाम निक्षेप २ स्थापना निक्षेप३ द्रव्य निक्षेप और ४ भाव निक्षेप(५) स्याद्वाद—अपेक्षा पूर्वक कथन का नाम स्याद्वाद है।

१ स्यादस्ति, ३ स्यान्नास्ति, ३ स्यादस्ति स्यान्नास्ति, ४ स्याद्वक्तव्य ५ स्यादस्ति अवक्तव्य, ६ स्यान्नास्ति अवक्तव्य,७ स्यादस्ति स्यान्नास्ति अवक्तव्य यह सप्त भंगी है। इनसे युक्त सापेक्ष वचन स्याद्वाद है।

(६) सो लहगुण-लिंगतीन,—१ पुल्लिग, २ स्त्रीलिङ्ग,३ नपुंसकलिङ्ग ! तीनकाल-४ भूत, ५भविष्य, ६ वर्तमान। तीन वचन,–७ एक वचन, ८ द्विवचन, ९ बहु वचन। दो प्रमाण...१० प्रत्यक्ष, ११ परोक्ष, । १२ उपनीत (स्तुतिमय) १३ अपनीत (निन्दात्मक) १४उपनीतापनीत (स्तुति निन्दायुक्त, यथा सुरूपा किन्तु कुशीला) १५ अपनीताऽपनीत (निन्दा स्तुति युक्त, यथा कुरूपा किन्तु सुशीला) १६ अध्यात्म वचन।

(७) दस गुण–१ जनपद सत्य, २ सम्मत सत्य, ३ स्थापना–सत्य, ४ नाम सत्य, ५ रूप सत्य,६ पडुच्च सत्य, ७ व्यवहार सत्य, ८ भाव सत्य, ९ योग सत्य, १० उपमा सत्य।

(८) चार गुण---१ द्रव्यानुयोग, २ चरण करणानुयोग, ३ गणितानुयोग, ४ धर्मकथानुयोग। या आक्षेपनी आदि ४ प्रकार के गुण

सूत्र ने अर्थ अनुयोग ए, बीय निजुत्ति संजुत्त रे।

तीय भाष्ये नये भाविओ, मुनि वदे वचन इम तंतरे॥१०॥सा०

शब्दार्थ...सूत्र--मूल आगम। निज्जुत्ति–निर्युक्ति। संजुत्त--सहित। तीय--तीसरा। भाष्य–विस्तृत विवेचन। तंत--सार।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ...पहले सूत्र और अर्थ के अनुयोग से, दूसरे निर्युक्ति से मिश्रित अनुयोग से तथा तीसरे भाष्य, टीका, चूर्णि आदि के अनुयोग (व्याख्यान) से मुनि तत्वों का प्रतिपादन करे ॥ १० ॥

ज्ञान समुद्र समता भर्या, संवरी दया भण्डार रे ।
तत्वानन्द आस्वादता, वंदिये चरण गुणधार रे॥११॥ सा०

शब्दार्थ...आस्वादता--चखते हुये । वंदिये--नमस्कार करिये । चरण—चारित्र

भावार्थ— ऐसे तत्वानन्द का आस्वादन करने वाले, ज्ञान के सागर, समता-धारी, संवर और दया के भण्डार, चारित्र के गुणवाले मुनियों को वन्दना करिये ॥

मोह उदये अमोही जेहवा, शुद्ध निज साध्य लयलीन रे ।
'देवचन्द्र' तेह मुनि वन्दिये, ज्ञानामृत रस पीन रे॥१२॥सा०

शब्दार्थ...अमोही जिस्या = वीतराग के समान । लयलीन = मग्न । ते--वे । ज्ञानामृत रस पीन...ज्ञान रूपी अमृत रस से पुष्ट ।

भावार्थ—यद्यपि सूक्ष्म मोह का क्षय तो बारहवें गुणस्थान में होता है । परन्तु अमोही के तुल्य अर्थात् वीतरागता के सम्मुख दृष्टिवाले, ज्ञानामृत रूपी रस से पुष्ट, अपने शुद्ध साध्य में लीन, मुनियों को वन्दना करने को श्रीमद् देवचन्द्र जी महाराज कहते हैं तथा स्वयं देवचन्द्र जी उन्हें वन्दना करते हैं ॥१२॥

इति भाषा समिति स्वाध्याय ।

:---:

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ढाल-३

तीसरी-'एषणा समिति'की

"मेतारज मुनिवर ! धन धन तुम अवतार ॥ एदेशी ॥

समिति तीसरी एषणा जी, पञ्च महाव्रत मूल ।
अणाहारी उत्सर्ग नो जी, ए अपवाद अमूल ।
मनमोहन मुनिवर ! समिति सदा चित्तधार ॥१॥ अ०

शब्दार्थ...एषणा--देख भाल । अणाहारी-आहार न करने की अवस्था । अमूल--अमूल्य । पंच महाव्रत--अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ।

भावार्थ--पहली ईर्या समिति में आहार लाने के लिये उपाश्रय से बाहर जाने व उसके कारणों का वर्णन किया था । परन्तु आहार की गवेषणा-ग्रहणेषणा तथा ग्रासेसणा का सविस्तार वर्णन इस एषणा समिति में ही आयगा । यह एषणा समिति पांचों ही महाव्रतों की मूल है । क्योंकि एषणा न हो तो आहार न हो, आहार न हो तो शरीर न हो, शरीर न हो तो महाव्रतों की साधना भी न हो, इसलिये एषणा समिति को महाव्रत का मूल कहा गया है । मूल उत्सर्गमार्ग से तो अनाहारीपन ही इष्ट है । उस उत्सर्गमार्ग का आहार ग्रहण रूप अपवाद मार्ग एषणा समिति है । हे मन मोहनमुनिवर ? इस समिति को सदा के लिये अपने मन में धारण करो १ ।

चेतनता चेतन तणी जी, नवा परसंगी तेह ।
तेणे तिणपर सनमुख नवी करे जी, आतम रति व्रती जेह-२ म०

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—चेतन तणी=जीवात्मा की। नवी—नहीं, परसंगी=पुद्गलों के संग वाली। पर सनमुख=पुद्गलों के सामने। आतम रतिव्रती=आत्म स्वरूप में खुश रहने वाले।

भावार्थ...चेतन की चेतनता, चेतन के सिवाय दूसरों के साथ रहने वाली नहीं है। इसलिये आत्म रमण में रूचि वाले मुनि, अपनी वृत्तियों को पर (पुद्गल) सम्मुख नहीं करते। २

काय जोग पुद्गल ग्रहेजी, एह न आतम धर्म।
जाणग कर्त्ता भोगता जी, हूं माहरो ए मर्म—३ म०

शब्दार्थ—जाणग—जानने वाला। कर्ता--करनेवाला। भोगता--भोगनेवाला। मांहरो--मेरा। मर्म-सार।

भावार्थ...आहार के पुद्गलों को ग्रहण करने का कार्य काय-योग का है। यह निश्चित है कि यह कार्य आत्मधर्म नहीं है। मैं (आत्मा) तो निश्चिय नय से मेरे आत्म स्वरूप का ज्ञाता, अपने ही में रहे हुये ज्ञानादि गुणों का कर्ता, तथा निजी आत्मिक सुख का भोक्ता हूं। यह एक मर्म (रहस्य) की बात है। —३

नभिसंधिय वीर्य नो जी,रोधक शक्ति अभाव।
पण अभिसंधिज वीर्य थी जी, केम ग्रहे पर भाव —४ म०

शब्दार्थ--अनिभिसंधिय--इन्द्रिय जनित। रोधक शक्ति--रोकने की ताकत अभाव=नहोना। अभिसंधि--आत्म जनित। ग्रहे--ग्रहण करे। परभाव--पुद्गल।

भावार्थ...अनभिसंधिय (इन्द्रिय जनित) वीर्य को रोकने वाली शक्ति का अभाव है, आत्म शक्ति (अभिसंधि) द्वारा पर भावों का ग्रहण भी नहीं हो सकता। अतः मुनि पर भावों का ग्रहण कैसे कर सकता है! आत्मिकशक्ति और इन्द्रिय अवभिसंधित्व शक्ति अपना अलग-अलग काम करती है। ४

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

एम परत्यागी संवरी जी, न ग्रहे पुद्गल खंध ।
साधक कारण राखवाजी, अशनादिक संबंध-५ मन०

शब्दार्थ—पुद्गल खंध--कर्म पुद्गल का समूह । कारण--साधना का कारण शरीर

भावार्थ--ऐसे पुद्गल त्यागी और संवर अवस्था वाले मुनि पुद्गलों के स्कंध (समूह) रूप आहार को ग्रहण नहीं करे । किन्तु मुनि की आत्मा अशरीरी तो है नहीं, अशरीरी बनने की कोशिश में जरूर है । निश्चय नय से आत्म-सिद्धि रूप कार्य का कारण आत्मा ही है परन्तु कथंचित् भवग्राही शरीर भी नैमित्तिक कारण है । अतः जब तक कार्य सिद्ध न हो जाय, तबतक उसके साधक रूप शरीर को स्वस्थ और उपयोगी रखने के लिये आहार करना आवश्यक है । ५

आतम तत्व अनंततांजी, ज्ञान बिना न जणाय ।
तेह प्रगट करवा भणीजी, श्रुत सज्झाय उपाय।६ मन०
तेह देहथी देह एह जी, आहारे बलवान ।
साध्य अधूरे हेतुने जी, केम तजे गुणवान—७मन०

शब्दार्थ--आतम तत्त्व--आत्मा के गुणों को । अनंतता--अनंतपना । करवाभणी—करने के लिये । श्रुत-ज्ञान । सज्झाय=स्वाध्याय । तेह=वह, स्वाध्याय । साध्य अधूरे...लक्ष्य अपूर्ण हो तब तक ।

भावार्थ...साधक के लिए आवश्यक है—आत्मा के शुद्ध स्वरूप को पिछानना और उसे प्रगट करना । क्योंकि आत्म तत्त्वके अनंत गुणों रूप अनंतताको पहचानने के लिये ज्ञानकी आवश्यकता है और ज्ञान स्वाध्याय से प्राप्त होता है एवं स्वाध्याय के लिए स्वस्थशरीर की आवश्यक्ता है। स्वस्थता आहारसे रहतीहै अतःसाध्य अधूरा रहते हुये साधन (आहार) को गुणवान व्यक्ति कैसे छोड़ सकता है ? इसलिये गुणवान मुनि एषणा पूर्वक प्राप्त किया हुआ आहार अलोलुपता से ग्रहण करे-६-७

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तनु अनुयायो वीर्य नो जो, वर्तन अशन संयोग ।
वृद्ध यष्टि सम जाणी ने जी, अशनादिक उपभोग...८ मन०

शब्दार्थ—तनु अनुयायो=शरीर के साथ रहनेवाला । वर्तन—व्यवहार । अशन=संयोग —आहार के संयोग से । यष्ठि—लठ्ठी । उपभोग—काम में लाना ।

भावार्थ=शरीराश्रित जो आत्मवीर्य है, वह आहार के संयोग से प्रवृत्त होता है अतः साधक आहारादि को, जैसे बूढ़े को लकड़ी के सहारा की जरूरत होती हैं वैसे ही शरीर को आहार की है, ऐसा समझकर ग्रहण करे । —८

जिहां साधकता नवी अडे जी, तिहां नवी ग्रहे आहार ।
बाधक परिणति वारवा जी, अशनादिक उपचार...९ मन०

शब्दार्थ—बाधक परिणति—बाधा उत्पन्न करने वाली स्थिति । वारवा—निवारण करने के लिये । उपचार—उपयोग करे ।

भावार्थ=जहां तक आहार के विना आत्म साधना अक्षुण्ण चलती रहे, या रह सके वहां तक तो मुनि आहार ग्रहण न करे । परंतु साधना में बाधक होने वाली (कारणों की) परिणति को रोकने के लिये अर्थात् बाधा करने लगे तब आहारादिक का उपयोग करे । —९

सडतालीसै द्रव्य ना जी, दोष तजी निराग ।
असंभ्रांत मूर्छा विना जी, भ्रमर परे बड़ भाग—१० मन०

शब्दार्थ—असंभ्रान्त—उपयोग सहित । बड़ भाग—बड़े भाग्य वाला ।

भावार्थ--साधु की ओर से उत्पन्न होने वाले सोलह दोष, (१६) दाताकी ओर से उत्पन्न होने वाले सोलह दोष, (१६) दोनों की ओर से सम्मिलित रूप से उत्पन्त होने वाले दश (१०) दोष, यों बयाँलीस दोष एषणा के हैं और

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पांच (५) दोष ग्रासेषणा के हैं। इन सैंतीलीस दोषों को टाल करके आहार ग्रहण करे। कर्म बंध के मूल कारण राग, मूर्छा, संभ्रम, लोलुपता आदि भाव दोषों-को भी टालता रहे। प्रायः भाव दोषों के बिना द्रव्य दोष नहीं हुआ करते, कदाचित् हो भी जाये तो भाव दोष के बिना कर्म बंध नहीं होता। इसमें देने वाला, लेने वाला, और दी जाने वाली वस्तु शुद्ध होनी चाहिये। जो भाग्यशाली मुनि इन दोषों से रहित आहार लेते हैं, वे भंवर के समान फूलों से रस लेकर भी दाता को कष्ट नहीं पहुंचाते। १०

तत्त्वरूचि तत्त्वाश्रयी जी, तत्त्वरसिक निग्रंथ।
कर्म उदये आहारतां जी, मुनि माने पली मंथ—११ मन०

शब्दार्थ—कर्म उदय—क्षुधा वेदनीय कर्म के उदय से। आहारतां—आहार लेते हुए भी। पलीमंथ—उपाधि-बेठ।

भावार्थ—तत्त्वों की रूचि वाले, तत्त्वों के आश्रयी तथा तत्त्वों के रसिक निग्रन्थ मुनि क्षुधा वेदनीय के उदय होने से आहार करते हुये भी उस आहार को पलिमंथ(वेठ) के तुल्य समझते हैं। ११

लाभ थकी पण अणलहे जी, अति निर्जरा करंत।
पामे अणव्यापक पणे जी, निर्मम संत महंत—१२ मन०

शब्दार्थ—लाभ थकी—मिलने से भी। अणलहे—न मिलने पर। पामें-मिलनेपर अणव्यापक पणे—लोलुपता रहित। निर्मम—ममता रहित

भावार्थ—जिस देश में जिस समय भोजन बनता हो तब, वा क्षुधा वेदनय के उदय होने पर तथा अपने प्रत्याख्यान के समाप्त होने पर मुनि आहार करते है, तथा अन्तराय कर्म के उदय से आहार न मिलने पर शान्त रह कर बहुत से कर्मों

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

का निर्जरी करते है। आहार के लिये गौचरी जाना तो अपने बस की बात है। किंतु आहार का मिलना न मिलना भाग्याधीन है। अपने पक्ष में तो अंतराय कर्म के उदय से तथा लोक पक्ष में लोगों के अनजान होने से अथवा दान-भावना की अल्पता से जब मुनि को आहार न मिले, तब सहजतया द्वेषोत्पत्ति की संभावना रहती है। लोगों पर द्वेष होने से मुनि सोचेगा, कि ये लोग कितने लोभी हैं ?, जो कि एक मुनि को भी भिक्षा नहीं दे सकते, तब इनके यहाँ अनाथ, दीन,–हीन, गरीबों को देने के लिये तो पड़ा ही क्या है ?। अपने पर द्वेष होगा, तब यों विकल्प आयेंगे कि सारे साधुओं को तथा भिखारियों को तो भोजन मिलता है किंतु मैं ही एक कैसा अभागा हूं, जो कि भूखा बैठा हूं। इस परिस्थिति में अपने प्रति और लोगों के प्रति दीन-हीन भावना न आने का मार्ग इस गाथा में दिखलाया है। मुनि विचारे कि आहार मिलने की बजाय न मिलने से अधिक निर्जरा होती है। अतः अच्छा हुआ ! यदि आहार नहीं मिला तो सहज ही में तप की वृद्धि हो गई, स्वाध्याय को समय अधिक मिलेगा, स्थंडिल भूमि जाने की आवश्यकता न पड़ेगी। पात्र धोने न पडेंगे। शरीर हल्का रहने से ध्यान की स्थिरता अधिकतर बन सकेगी। क्या है, आज नहीं मिला तो कल मिल जायेगा। ऐसे विराग पूर्वक चिंतन से बहुत निर्जरा होती हैं। ग्लानि, द्वेष, आर्त्त ध्यान आदि पास ही नहीं आ सकते। यदि मुनि को आहार प्राप्त हो गया तो उसे अलोलुपता से ग्रहण करे। १२

अणाहारता साधता जी, समता अमृत कंद।
श्रमण भिक्षु वाचंयमी जी, ते वंदे 'देवचन्द्र'–१३ मन०

शब्दार्थ—अणाहारता—अनाहारी पना। साधता—साधते हुये।

भावार्थ= अणाहारिकता की साधना करने वाले, समता रूपी अमृत के कंद, श्रमण, मुनि, भिक्षु आदि को श्री देवचद्र जी वंदना करते हैं। —१३

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ढाल—४

चौथी-आदान भंड निक्षेपणा समिति की

"धन जिन शासन मंडन मुनिवरा" ए देशी

समिति चौथी रे चिहुं+ गति वारणी, भाखी श्री जिनराज।
राखी परम अहिंसक मुनिवरे, चाखी ज्ञान समाज – १

शब्दार्थ–चिहुंगति वारणी=चार गति को रोकने वाली। चाखी=आस्वादन किया

सहज संवेगी रे समिति परिणमो, साधवा आतम× काज।
आराधन ए संवर भाव नो, भव जल तरण जहाज–२ स०

शब्दार्थ –सहज संवेगी =स्वाभाविक वैराग्य वाले। परिणमो-धारन करो।

भावार्थ-हे सहज संवेगी अर्थात् स्वाभाविक वैराग्य वाले मोक्षाभिलाषी मुनि! आत्म कार्य की साधना के लिये समिति-मार्ग में प्रवृत्त हो जाओ। जिनेश्वर ने कहा है कि यह चोथी समिति संवर भाव की आराधना का कारण, भव समुद्र से तरने के लिये जहाज तथा चार गति को रोकने वाली है। अतः परम अहिंसक मुनि समाज ने इसे धारण किया है। १—२

अभिलाषी निज आत्म तत्त्व ना, साखी धरे× रे सिद्धान्त।
नाखो सर्व परिग्रह संग ने, ध्यानाकांखी रे सन्त –३स०

शब्दार्थ—संग ने=बन्धन को। ध्याना कंखीध्यान के अभिलाषी।

+, चऊ ×, साधन ×, करि

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ=आगम वाक्यों को प्रमाण रूप मानते हुए निजी आत्म तत्त्व के अभिलाषी मुनि परिग्रह के सर्व बंधनों को तोड़कर केवल शुद्ध ध्यान की आकांक्षा रखते हैं।—३

संवर पंच तणो ए भावना, निरुपाधिक अप्रमाद ।
सर्व परीग्रह त्याग असंगता, तेहनो ए अपवाद—४ स०

शब्दार्थ—निरुपाधिक=उपाधि रहित। असंगता=राग के बन्धन से रहित।

भावार्थ—अपरिग्रह आदि पंच संवर द्वारों को यह भावना है कि निरुपाधिक (उपाधि-उपधि-रहित) और अप्रमादी बनना। किसी भी वस्तु का किंचित् मात्र अंश भी ग्रहण न करना, उत्कृष्ट असंगता है। इस उत्सर्ग मार्ग के अपवाद स्वरूप यह चौथी समिति है। इससे मुनि को चौदह उपकरणों के रखने की अनुमति दी गई है।—१४ उपकरण हैं—

(१) पात्र=गृहस्थों के घर से भिक्षा लाने के लिये काष्ठ या मिट्टीका पात्र।
(२) पात्र बन्धन=पात्र को बांधने का वस्त्र।
(३) पात्र स्थापन=पात्र रखने का कपड़ा।
(४) पात्र-केसरिका=पात्र पोंछने का कपड़ा।
(५) पटल= पात्र ढंकने का कपड़ा।
(६) रजस्त्राण= पात्र लपेटने का कपड़ा।
(७) गोच्छग=पात्र वगैरह साफ करने का कपड़ा।

ऊपर लिखे सात उपकरणों को पात्र निर्योग कहा जाता है। इनका पात्र के साथ संबन्ध है।

(८-९-१०) पछेवड़ी=ओढने की चद्दरें तीन।
(११) रजोहरण=ऊन आदि का बना हुआ ओघा।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(१२) मुखवस्त्रिका = बोलते समय मुख पर रखा जाने वाला कपड़ा ।

(१३) मात्रक = (पडघा) लघु शङ्का आदि परठने के काम में आनेवाला पात्र

१४ थान पर पहनने का कपड़ा ।

(पञ्च वस्तुक गाथा--७७१--७७६)

" आगमोक्त उपकरण"

१ भंड, ४ पात्र ३, ५ झोली, ६ पाय केसरिया (पात्र प्रमार्जनिका) ७-पाय ठवणं (मंडलीयो) १० पडला, संख्या ३) ११ गोच्छग, १२ रस्तान, १३-१४-१५, पछेवडी ३, १६ रजोहरण, १७ चोलपटो, १८ मुखवस्त्रिका, १६ पाय पुंछण ।

(प्रश्नव्याकरण संवर द्वार ५ पांचवां) प्रथम में भी नाम है दे० पृ० २०८

१ डंडा, २ लाठी, ३ वांस की खपाट, ४ (निशीथ-उद्देश १)

आर्याओं के लिये १ जांघिया, २ कंचुको, (बृहत्कल्प-उद्देश ३)

स्थविर के लिये—

१ छत्र, २ दंड, ३ भंड, ४ मत्र, ५ लाठी, ६ पाटली, ७ चेल, ८ चिलमिली, ६ चर्म, १० चर्म कोथली, ११ चर्मखंड, (ववहार-उद्देश-८)

१ पात्र, २ पात्र बंधन-झोली, ३ पात्र केसरिका—कम्बल का टुकड़ा, ४-पात्र स्थापन-पात्र रखने का कपड़ा, ५-६-७ तीन पटल-पात्र ढंकने के वस्त्र ८ रज-स्त्राण—पात्र में लपेटने का वस्त्र जिसको आज रस्तन कहते हैं, ६ गोच्छक-पूंजणी, १०-११-१२ प्रच्छादक—ओढ़ने के तीन वस्त्र जिसमें दो सूती और एक ऊनी, १३ रजोहरण, १४ चोलपट्टग—धोती के स्थान पर बांधने का वस्त्र; १५ मुखा—नन्तक — मुखवस्त्रिका,,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

श्याने ? मुनिवर उपधि+ संग्रहे, जे परभाव विरत्त ।
देह अमोही रे नवी लोही कदा, रत्नत्रयी संपत्त—५ स०

शब्दार्थ-उपधि=उपकरण । विरत्त=विरक्त । लोही=लोभी । रत्नत्रयी=ज्ञान—दर्शन—चारित्र रूपी तीन रत्न । श्याने=किसलिए, क्यों

भावार्थ—एक तर्फ तो अपरिग्रह और असंगता का उपदेश तथा दूसरी ओर चौदह उपकरण रखने की अनुमति देखकर शिष्य प्रश्न करता है, कि गुरूदेव ! अपने शरीर पर भी मोह न करने वाले, लोभ से रहित, पौद्गलिक भावों से विरक्त, ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी रत्नत्रयी से संयुक्त मुनि इन उपकरणों का संग्रह किसलिये करते हैं ?। ५ अगली गाथाओं में इसका उत्तर देते हुए संयमोपकरण रखने का कारण बतलाते हैं—

भाव अहिंसकता कारण भणी, द्रव्य अहिंसक साध ।
रजोहरणमुख वस्त्रादिक धरे, धरवा योग समाध--६ स०

शब्दार्थ—भाव अहिंसकता=आत्म गुणों की रक्षा । कारण भणी=करने के लिये । रजोहरण=ऊन का बना हुआ जैन मुनि का एक उपकरण । मुख-वस्त्रिका=बोलते समय मुंह के आगे रखने का कपड़ा ।

भावार्थ—इस गाथा में रजोहरण एवं मुखवस्त्रिका रखने का प्रयोजन बतलाते है । इसका समाधान करते हुये गुरु बोले, साधु के लिये भाव अहिंस-कता (भावों में किसी के प्रति राग द्वेष न होना) साध्य है । उसका कारण है द्रव्य अहिंसकता (द्रव्य से किसी भी जीव की हिंसा न करना) । द्रव्य अहिंसकता का पालन करने के लिये रजोहरण, मुखवस्त्रिका, वस्त्र, पात्र, दंड आदि रखें जाते हैं । एक दृष्टि से तो ये साधु के चिन्ह हैं । दूसरी दृष्टि से

+ उपगरण

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इनकी उपयोगिता भी है। यथा भूमि पर अथवा शरीरादि पर कोई सूक्ष्म जीव हो, उसे रजोहरण द्वारा पूंजकर अहिंसा का पालन किया जाता है। खुले मुंह बोलने से बातचीत के प्रसंग में व्यक्ति पर, तथा पठन-पाठन-व्याख्यान काल में शास्त्रों पर थूक के छींटे लगने का, अथवा वायु काय के जीवों की विराधना तथा संपातिम (उडकर पड़ने वाले) त्रस जीवों की हिंसा का दोष न हो पाये, इस लिये मुखवस्त्रिका की आवश्यकता है। काय योग व वचन योग का वर्णन करने से मनोयोग का ग्रहण स्वयमेव ही हो गया। अतः इन तीनों योगों की समाधि के लिये उपकरण रखना आवश्यक तथा निर्दोष है।—६

शिव साधन नुं मूल ते ज्ञान छे, तेहनो हेतु सज्झाय।
ते आहारे ते वली पात्र थी, जयणाये ग्रहवाय—७ स०

शब्दार्थ—जयणाये = यत्न पूर्वक। ग्रहवाय = लिया जाता है।

भावार्थ-इस गाथामें पात्र (पातरा) रखनेकी आवश्यक्ता या प्रयोजन बतलाते हुये बताया गया है कि मोक्ष का मूल साधन ज्ञान, है ज्ञान का हेतु स्वाध्याय है, स्वाध्याय का बाह्य निमित्त शरीर का पोषक आहार है। वह आहार तभी अहिंसा पूर्वक हो सकता है, जब कि स्थविरकल्पी मुनि के पास पात्र हो। क्योंकि पात्र के बिना करपात्रों में द्रव पदार्थ ग्रहण करते समय यदि बिन्दु मात्र भी नीचे गिर-जाय तो अजयणा की संभावना है। वह पात्र भी उत्कृष्ट साधना वालों के पास एक ही होने का बतलाया है।—७

बाल तरुण नर नारी जंतुने, नग्न दुगंछा रे हेतु।
तेणे चोलपट्ट ग्रही मुनि उपदिशे-शुद्ध धर्म संकेत-८ स०

शब्दार्थ—दुगंछा = घृणा। हेतु = कारण। चोलपट = धोती के स्थान पर पहनने का मुनि का वस्त्र।

Jain Educationa International　For Personal and Private Use Only　www.jainelibrary.org

भावार्थ—इस गाथा में चोलपट्ट (कटि जंघा ढकने का वस्त्र) रखने का ही प्रयोजन बताते हैं।—स्थविरकल्पी मुनि, बाल, तरुण, नर, नारी समाज की दुगंछा(घृणा) दूर करने के लिये चोलपट्ट (धोती के स्थान पहनने का वस्त्र) धारण करे। क्योंकि जन समाज में रहना, भिक्षा के लिये घरों में प्रवेश पाना, धर्मोपदेश देनेके लिये सभा में बैठना, फिर नग्नावस्था में रहना बाल तरुण व नारी आदि के लिये घृणा का कारण है। इसलिए चोलपट्ट धारन करके मुनि शुद्ध धर्म का उपदेश दे। —८

दंश मशक सीतादिक परीसहे, न रहे ध्यान समाधि।
कल्पकादिक निरमोही पणे,धारे मुनि निराबाध—९ स०

शब्दार्थ—परिसहे =कष्ट उत्पन्न होने से। समाधि =चित्त की स्थिरता। कल्पक =ओढने का वस्त्र। निराबाध =बाधा रहित।

भावार्थ-अब चादर आदि वस्त्र को रखने का प्रयोजन बतालाते हुए कहते है कि डांस, मच्छर, आदि क्षुद्र जन्तुओं के उपद्रव से तथा अधिक शीत के कारण समाधि पूर्वक ध्यान नहीं हो सकता। इसलिये मुनि मूर्च्छा रहित और मर्यादा सहित वस्त्र धारण करे...९

लेप अलेप नदी ना ज्ञान नो, कारण दंड ग्रहंत।
दशवैकालिक भगवई साख थी, तनु स्थिरता ने रे तंत-१० स०

शब्दार्थ—लेप =नदी पार करते समय नदी के पानी की उंडाई यदि जंघा तक हो तो लेप कहा जाता है। दंड =बडी लठ्ठी। तनुस्थिरता =शरीर की स्थिरता के लिये।

भावार्थ--दूसरा कोई मार्ग न हो, तब मुनि नदी को पार कर सकता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उसका जल मापने के लिये, अर्थात् जंघा प्रमाण जल को लेप, और उससे कम हो तो अलेप, इसका ज्ञान करने के लिये, तथा जल में या स्थल में सहारा लेने के लिये मुनि कानों तक के प्रमाण वाला एक दंड रख सकता है। श्री दशवैकालिक सूत्र और भगवती जी में इसका उल्लेख है (दंडगंसिवा० अ० ४)

लघु त्रस जीव सचित्त रजादिकनो, वारण दुःख संघट्ट।
देखी पूंजी रे मुनिवर वावरे, ए पूरव मुनि वट्ट—११ स०

शब्दार्थ--लघु=छोटे-छोटे। त्रस=चलने फिरने वाले जीव सचित्त=जीव-सहित। संघट्ट=स्पर्श। पूंजी=पूंज प्रमार्जन करके। वावरे=काम में ले। पूरव=पहले से। मुनिवट्ट= मुनियों का मार्ग।

भावार्थ--अपने उपकरणों को काम में लेते समय मुनि यह देखे कि इनपर लघु त्रस जीव तथा सचित्त रजकण तो नहीं पड़े हुये हैं। यदि हों तो उन्हें देखकर या पूंज करके (साफ करके दूर हटाके काम में लाये। मुनियों का यह मार्ग पूर्वानुपूर्व से प्रसिद्ध चलता आ रहा है। -११

पुद्गल खंध रे ग्रहण निखेवणा, द्रव्ये जयणा रे तास।
भावे आतम परिणति नव नवी, ग्रहतां समिति प्रकाश-१२स०

शब्दार्थ-ग्रहण निखेवणा=लेना और रखना। नव नवी=नई-नई। ग्रहतां=ग्रहण करने से। प्रकाश=निर्मल।

भावार्थ=पुद्गल खंध अर्थात् पुद्गल समूह से निष्पन्न उपकरण आदि लेने और रखने में की जाने वाली जयणा, द्रव्य जयणा है। भावों से जो आत्मा में नई-नई परिणति आती उसमें कोई बुरी परिणति न आ जाए, इसका विवेक रखना भाव जयणा है। इस जयणा या से उपयोग पूर्वक प्रवृति से समिति प्रकाश में आती है।--१२

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

बाधक भाव अद्वेष पणे तजे, साधक ले गत राग ।
पूर्व गुण रक्षक पोषक पणे, नीपजते शिव माग—१३ स०

शब्दार्थ...अद्वेष पणे=द्वेष रहित सद् बुद्धि से । गत राग=मोह बिना । पूर्वगुण=पहले प्राप्त किये हुये सम्यक्त्व आदि गुण । नीपजते=प्राप्त होते ।

भावार्थ...जो उपकरण संयम मार्ग में बाधक बनते दीखें, उन्हें अद्वेष भावना से शीघ्र त्याग दे । अजीव पदार्थों पर भी यदि द्वेष हो जाय तो अजीव प्राद्वेषिकी क्रिया लग जाती है । जो उपकरण साधक बनते हों, उन्हें राग रहित होकर ग्रहण करके काम में ले । आज तक की साधना में जो गुण प्राप्त हुये हैं, उनका रक्षण और पोषण करता हुआ मुनि जब तक मोक्ष प्राप्त न हो जाय तब तक उन उपकरणों का उपयोग करता रहे । उपकरणों के अतिरिक्त भी आत्मोन्नति में जो बाधक कारण हों उन्हें छोड़ा जाय, साधक कारणों को भी रागरहित भाव से अपनाया जाय ।...१३

संयम श्रेणी रे संचरता मुनि, हरता कर्म कलंक ।
धरता समता रस एकत्त्वता, तत्त्व रमण निःशंक--१४ स०

शब्दार्थ...रस एकत्वता=एकत्व भावना रूपी रस । निःशंक=निर्भय ।

भावार्थ...संयम मार्ग में विचरता आगे बढता हुआ मुनि कर्मों के कलंक का नाश करे । तथा समता सहित रस को धारण करता हुआ एकत्व-भावना को भाता हुआ निःशंक हो कर आत्मतत्त्व में रमण करे ।...१४

जग उपकारी रे तारक भव्य ना, लायक पूर्णानन्द ।
'देवचन्द्र' एहवा मुनिराज ना, वंदे पय अरविन्द । १५—स०

शब्दार्थ...लायक=योग्य । पय अरविंद=चरण कमल ।

भावार्थ...जगत के उपकारी, भव्य जीवों को तारने वाले, पूर्णानन्दी, और योग्य मुनिराजों के चरणारविन्द को देवचन्द्र जी वंदना करते हैं । १५

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ढाल-५ पांचवीं

"परिठावणिया समिति" की

"कडलां घड़ दे रे" ए देशी"

पांचवीं समिति कहो अति सुंदरू रे, परिठावणिया नाम।
परम अहिंसक धर्म वधारणी रे, मृदु करुणा परिणाम —१
मुनिवर सेवजो रे, समिति सदा सुखदाय।
स्थिर भावे संयम सोहिये रे, निर्मल संवर थाय...२मु०

शब्दार्थ...धर्म वधारणी=धर्म बढाने वाली। मृदु=कोमल। स्थिर भावे= स्थिरता से। सोहिये=शोभा देते है।

भावार्थ=पारिठावणिया नाम की पांचवीं समिति बड़ी सुंन्दर है। जिसके पालन से आत्मा के परिणाम कोमल और करुणा वाले बनते हैं। यह परम अहिंसा धर्म को बढाने वाली है। अतः हे मुनिवर ! सदा सुख देने वाली इस समिति का सेवन करो। क्योंकि योग की स्थिरता से संयम को शोभा होती है, तथा निर्मल संवर की प्राति होती है।:...१,२

देह नेह थी चंचलता वधे रे, विकसे दुष्ट कषाय।
तिण तनुराग तजी ध्याने रमे रे, ज्ञान चरण सुपसाय-मु०-३

शब्दार्थ...देहनेह थी=शरीर के मोह से। कषाय=क्रौध-मान-माया=लोभ

---

१ पंचम २ थिरता।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ=शरीर पर राग होने से चंचलता बढती है तथा दुष्ट कषाय का विकास होता है। इसलिये मुनि शारीरिक मोह को छोड़कर ध्यान में रमण करे। ज्ञान और चारित्र के प्रसाद से ही ध्यान की प्राप्ति होती है। ध्यान का अर्थ है चित्त की एकाग्रता। दूसरी २ क्रियाओं द्वारा जितने कर्मों का क्षय नहीं होता, उतना सद्ध्यान द्वारा क्षण मात्र में किया जा सकता है।...३

जिहां शरीर तिहां मल उपजे रे, तेह तणो परिहार।
करे जंतु चर स्थिर अण दुहव्ये रे, सकल दुगंछा वार-४ मु०

शब्दार्थ...मल=टट्टी। तेह तणों=उसका। परिहार=त्याग। अणदुहव्यो= विना दुखाये। दुगंछा=घृणा। वार=छोड़ करके

भावार्थ=जहां शरीर है, वहां आहार है। जहां आहार है, वहां निहार (मल) है। मल त्याग करने की भी मुनियों की अपनी एक विधि है। त्रस तथा स्थावर जीवों की विराधना (हिंसा) को तथा सारी दुगंछा (घृणा) को टाल करके मल परठने का विधान है। जैन मुनि के लिये नाली वगेरे में पेशाब करने का निषेध है। अतः उसके लिये एक अलग पात्र रखा जाता है। जब लघु शंका (पेशाब की हाजत) हो तब, उसमें पेशाब करके खुले स्थान में यतना पूर्वक गिरा दे। ऐसा नहीं हो सकता कि आलसी गृहस्थों की तरह सारी रात का मूत्र पात्र में इकट्ठा होकर सडता रहे। मुनि जब मूत्र परठने को जाता है, तब जनसमाज देखता भी है अतः संभव है कि मुनि मन ही मन घृणा महसूस करे अथवा कोइ साधर्मी साधु की अस्वस्थ दशा में उसके मलमूत्र गिराने का प्रसंग आजाय, तब ग्लानि पैदा हो। अतः कहा है कि सारी घृणा को दूर-करके परठे तथा रोगी की सेवा का कार्य सहर्ष करे। तथा देवालय, क्रीडांगन, या गृहस्थ के घर के सामने मल मूत्र को न परठै, जिससे मुनि के प्रति लोगों में घृणा फैले।-४

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

संयम बाधक आत्म विराधना रे, आणा घातक जाण।
उपधि अशन शिष्यादिक परठवे रे, आयति लाभ पिछाण-५मु०

शब्दार्थ—आत्म विराधना=ज्ञानादिक का नाश। आणा घातक=आज्ञा की घात करने वाला। उपधि=उपकरण। आयति=भविष्यकाल।

भावार्थ--जो संयम में बाधक हों, आत्म विराधना करने वाले हों, श्री जिनेश्वर देव की आज्ञा के घातक हों, उन उपधि; आहार, तथा शिष्यादिक को भी भविष्य का लाभ देखकर परठ दे। तात्पर्य यह है, कि संयम की साधना तथा जिनाज्ञा का सुंदर ढंग से पालन करने के लिये उपधि आदि का ग्रहण किया जाता है। वे ही चीजें यदि संयम में बाधक बनजाती हो तब उन्हें परठने में संकोच नहीं होना चाहिये। जैसे आधाकर्मी वगेरे दोषों वाला आहार आने से तथा भूल से कोई विषैला भोजन आजाने से यदि न परठा जाये तो दोष है। इसीलिये शिष्य भी यदि आचार और विचार में शिथिल है, पासत्था है, अपने लिए बाधक बनरहा है तो उसे संघ से पृथक न करने में हानि है; और छोड़ देने में विशेष लाभ है।...५

वधे आहारे तपीया परठवे रे, निजकोठे अप्रमाद।
देह अरागी भात अव्यापता रे, धीर नो ए अपवाद--६ मु०

शब्दार्थ-वधे=जरूरत से अधिक होने पर। तपीया=तपस्वी। परठवे=अपनी विशेष विधि द्वारा गिराये। निज कोठे=अपने उदर रूपी कोठे में। भात अव्यापता=आहार पर अलोलुपता। धीर नो=धैर्यवान का।

भावार्थ=तपस्वी मुनि के जिस दिन उपवास का पच्चक्खाण हो, अुस दिन यदि अन्य मुनियों के लाये हुए आहार को परठने का अवसर आ जाय, तब गुरु देव आज्ञा देते हैं, कि हे तपस्वी ! यह आहार तुम करलो। क्योंकि उपवास

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

के पच्चक्खाण में "पारिठावणियागारेणं" आगार रखा जाता है तब तपस्वी मुनि उस अधिक आहार को परठने में जीव विराधनादि संभव होने से अपने उदर रूपी कोठे में परठते हैं। उस वक्त आहार में लोलुपता तथा शरीर पर राग भाव नहीं है। धैर्यवान मुनि के लिये यह एक अपवाद मार्ग है। ...६

संलोकादिक दूषण परिहरी रे, वरजी राग ने द्वेष।
आगम रीते परठवणा करे रे, लाघव हेतु विशेष—७ मु०

शब्दार्थ--संलोकादिक=लोग देखते हों, पास होकर आते जाते हों, आदिक दोष। लाघव हेतु=लघुता का कारण।

भावार्थ--मल-मूत्रादिक परठते समय संलोकादिक १०२३ दोषों को वरजे। राग द्वेष को टालकर आगमोक्त विधि सहित परठे। अपनी लघुता धारन करे अर्थात् मैं ऐसा काम क्यों और कैसे करूं, इस प्रकार अहंकार न आने दे, परठणा लाघव का विशेष हेतु है ...७

कल्पातीत अहालंदी क्षमी रे, जिन कल्पादि मुनीश।
तेहने परठवणा एक मल तणी रे, तेह अल्पवलि दीस-८ मु०

शब्दार्थ—कल्पातीत=कल्प-नियम से रहित। तेहने=उनको। अल्पवती=थोड़ी। दीस=दीखती है।

भावार्थ—कल्पातीत अर्थात् जिनेश्वरदेव, जिनकल्पी, यथालन्द कल्पी, परिहारविशुद्ध चारित्र वाले, पडिमाधारी, अभिग्रहधारी, को सिर्फ मल परठने का काम पड़ता है। वह भी रूक्षाहार होने से बहुत ही अल्प और अलेप होताहै।-८

रात्रे प्रश्रवणादिक परठवे रे, विधिकृत मंडल ठाम।
स्थविर कल्प नो विधि+अपवाद छैरे, ग्लानादिक ने काम-९ मु०

+प्रति

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—रात्रे = रातमें। परिश्रवणादि = मूत्र आदि। विधिकृत = विधि से बनाये हुये। मंडलठाम = गोलाकार एक निश्चित स्थान। ग्लानादि = रोगी आदि।

भावार्थ— स्थविरकल्पी मुनि को जब रात्रिकाल में मूत्रादिक परठना पड़े तो दिन में विधि सहित बनाये हुये मांडलों (निश्चित स्थान) में परठे। स्थविर कल्प का यह अपवाद मार्ग रोगी, बाल, वृद्ध मुनियों के लिये है। ९

एह द्रव्य थी भावे परठवे रे, बाधक जे परिणाम।
द्वेष निवारी मादकता बिना रे, सर्व विभाव विराम–१०मु०

शब्दार्थ--परिणाम = आत्मा के भाव। मादकता = मद-अहंकार।

भावार्थ--उपरोक्त परठना तो द्रव्य से है। भाव से परठना वह है कि आत्मा के गुणों को बाधा पहुंचाने वाले परिणामों का परित्याग करना। द्वेष का तथा सारे विभावों का निवारण करके अहंकार रहित बने अर्थात् सब विभावों से विराम ले ले।

आतम परिणति तत्वमयी करे रे, परिहरता परभाव।
द्रव्य समिति पर×भाव भणी धरे रे, मुनि नोएह स्वभाव-११मु०

शब्दार्थ--आत्म परिणति = आत्मा के परिणाम। परिहरता = छोड़े। पर भाव भणी = पौद्गलिक भावों को।

भावार्थ--पर भावों को छोड़ता हुआ मुनि अपनी आत्म परिणति को तत्त्वमयी कर डाले। किंतु द्रव्य समितियाँ परभाव होते हुये भी उनको धारन करे। भावों की विशुद्धता के लिए द्रव्य समितियाँ का पालन करें यह मुनि का स्वभाव है।

×पिण

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पंच समिति समिता परिणाम थी रे, क्षमाकोष गतरोष।
भावन पावन संयम साधता रे, करता गुण गण पोष--१२ मु०

शब्दार्थ-समिता=सहित। क्षमाकोष=क्षमा के भंडार। गतरोष=द्वेषरहित। पावन=पवित्र। पोष=पुष्ट।

भावार्थ - मुनि पांचों समितियों से समित,(सहित) क्षमा के भंडार,रोष रहित, पवित्र भावना से संयम को साधता हुआ हुआ आत्म गुणों का पोषण करे।

साध्य रसी निज तत्वे तन्मयी रे, उत्सर्गी* निर्माय।
योग क्रिया फल भाव अवंचता रे,शुचि अनुभव सुखदाय १३मु०

शब्दार्थ—साध्य रसी=मोक्ष के रसिक। निज तत्त्वे=आत्मरूप में। उत्सर्ग=निश्चय मार्गी। निर्माय=माया रहित। अवंचता=सरलता। शुचि=पवित्र।

भावार्थ—साध्य के रसिक, आत्म तत्त्व में लीन, उत्सर्ग मार्गी, निर्मायी, योग, क्रिया, क्रिया के फल, तथा अवंचन (सरलता) भावों से मुनि पवित्र अनुभव रूपी सुख को पाते हैं।—१३

आया जीते जीय+नाणी दमी रे, निश्चय निग्रह युत।
'देवचन्द्र' एहवा निर्ग्रन्थ जे रे ,ते मारा गुरु तत्त्व—१४ मु०

शब्दार्थ—आया=आत्मा। जीत=जीतनेवाला। नाणी=ज्ञानी। दमी=दमन करने वाला। निग्रह=रोकना। गुरुतत्त्व=गुरु तत्त्व में।

भावार्थ—अपने बाह्य आत्मा को जीतने से जेता, ज्ञानी, दमी, निश्चय नय से इन्द्रियों का निग्रह करने वाले जो निग्रन्थ हैं, वे मुनि मेरे (देवचन्द्र के) गुरु-तत्त्व में समाविष्ट हैं।—१४

---

* उछरंगी +आणाजोत युआ

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ढाल—६ छठी "मनोगुप्ति" की

"पुण्य प्रशंसिये" ए देशी

ट तुरंगम चित्त ने कह्यो रे, मोह नृपति परधान।
आर्त रौद्र नुं क्षेत्र ए रे, रोक तूं ज्ञान निधान रे। १
मुनि मन वश करो मन ए आश्रव गेहो रे।
मन ए* तारशे-मन स्थिर यतिवर तेहो रे ...मु०...२

शब्दार्थ—तुरंगम=घोड़ा। प्रधान=दिवान। आर्त=आर्त्तध्यान। रौद्र=रौद्रध्यान।आश्रवगेह=पाप का घर। यतिवर=मुनि श्रेष्ठ।

भावार्थ—तीन गुप्तियों में पहली गुप्ति मनोगुप्ति है। मन दो तरह का है, एक द्रव्य मन और दूसरा भाव मन। भाव मन का अर्थ है आत्मा के परिणाम और द्रव्य मन का अर्थ है मनोवर्गणा के पुद्गल। मनोवर्गणा के पुद्गल ग्रहण किये विना भाव मन की प्रवृत्ति नहीं हो सकती। यह मन सन्नी अर्थात् गर्भज पंचेन्द्रिय जीवों के ही होता है। हे ज्ञान निधान मुनि! मन को वंश में करो। क्योंकि यह मन दुष्ट घोड़े समान है, वह जैसे सवार को जंगल में भटका देता है, वैसे ही यह मन संसार में भटकाता है राजा के पास जैसे दिवान होता है वैसे ही मोहरूपी राजा के पास यह मन दिवान के समान है और आश्रव का घर तथा आर्त-रौद्र ध्यान का क्षेत्र है। किंतु इस दुष्ट मन पर यदि काबू पा लिया जाय तो वह तार भी सकता है। इसलिए मन स्थिर वाला मुनि सारे मुनियों में श्रेष्ठ है—१—२

*मन ममता रसी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गुप्ति प्रथम ए साधु ने रे, धर्म शुकल नो रे कंद ।
वस्तु धर्म चिंतन रम्या रे साधे पूर्णानन्द —३ मु०

शब्दार्थ—धर्म-शुक्ल = धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान। कंद = सार। चिंतन = विचारने में।

भावार्थ—मनोगुप्ति ही धर्म ध्यान तथा शुक्ल ध्यान का मूल है। ध्यानस्थ मुनि मन को रोक कर वस्तु धर्म के चिंतन में रमा हुआ पूर्णानन्द को पाता है। श्री उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है—

गाथा-दव्वं गुण समुदाओ, खित्तं ओगाह वट्टणा कालो ।
गुण पज्जाय पवत्ति, भावो निअ वत्थु धम्मो सो—

द्रव्य—अर्थात् गुण का समुदाय, क्षेत्र—अर्थात् अवगाहना रूप प्रदेश, काल—वर्तना, उत्पाद-व्यय, और ध्रौव्य, भाव-अर्थात् गुण-पर्याय की प्रवृत्ति। यह स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल तथा स्व-भाव रूप वस्तु धर्म होता है। तथा १ आचार धर्म-२ दयाधर्म—३ क्रिया धर्म और ४—वस्तु धर्म ऐसे चार भेद भी ठाणांग के चौथे ठाणे में है। इनमें से एक वस्तु धर्म को जाने विना शेष तीन धर्म फल दायक नहीं हो सकते। इसलिये वस्तु धर्म ही निश्चय धर्म है और बाकी के व्यवहार धर्म हैं। इसलिये उपरोक्त पद्य में बतलाया हुआ वस्तु धर्म का चिंतन ही श्रेष्ठ है।—३

योग ते पुद्गल जोग×छै रे, खेंचे अभिनव कर्म ।
योगवर्तना कंपना रे, नवी ए आतम धर्मो रे —४

शब्दार्थ—अभिनव = नये। योगवर्तना = योगों का व्यापार। कंपना = आत्म प्रदेशों की चंचलता। आतम धर्म = आत्मा का स्वभाव।

×जोगवे रे,खांचे

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ—पुद्गलों के संयोग से ही योगों की प्रवृत्ति होती है उससे नये कर्म बंधते हैं। योग प्रवृत्ति का अर्थ है आत्म प्रदेशों की चंचलता (कंपन)। यह आत्म धर्म नहीं है। क्योंकि योगों की प्रवृत्ति और आत्म प्रदेशों की चंचलता आत्मा की विभाव दशा है—४ मु०

वीर्य चपल पर संगमी रे, एह न साधक पक्ष।
ज्ञान चरण सहकारता रे, वरतावे दक्षो रे—५ मु०

शब्दार्थ-परसंगमी=पुद्गलों के संग से। सहकारता=सहायता में। दक्ष=चतुर।

भावार्थ—पुद्गलों के संयोग से प्रवृत होने वाला आत्मवीर्य, चंचल और पराश्रयी कहलाता है। यह साधक मन नहीं है। इसलिये दक्ष मुनि अपने मन को आत्म ज्ञान और चारित्र की सहायता में वरतावे। क्योंकि आत्म वीर्य के बिना ज्ञान और चारित्र की स्फुरणा नहीं होती।—५

रत्नत्रयी नी भेदना÷ रे, एह समल व्यवहार।
त्रिकरण*वीर्य एकत्वता रे, निर्मल आतमचारो रे—६ मु०

शब्दार्थ—भेदना=विराधना। समल=दोषयुक्त। त्रिकरण=तीन योग एकत्वता=एकी भाव। आतमाचार=आत्मा का आचार।

भावार्थ—ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपी रत्नत्रयी की भेदना (विराधना) अशुद्ध व्यवहार है। तीनों योगों के वीर्य की एकतानता आत्मा का निर्मल आचार है ज्ञान दर्शन चारित्र ये तीनों भेद तो व्यवहार की अपेक्षा से ही है निश्चय दृष्टि से तीनों एक ही है अतः अभेद है। —६

सविकल्पक गुण साधुना रे, ध्यानी ने न सुहाय।
निर्विकल्प अनुभव रसी रे, आत्मानंदी थायोरे–७ मु०

÷ भेदता * त्रिगुण

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—सविकल्प=विकल्प सहित। निर्विकल्प=विकल्प रहित-स्थिर।

भावार्थ—सविकल्पदशा—विकल्प का अर्थ है भेद। एक के बाद एक पदार्थ का चिंतन करना। ऐसे विचारों की श्रेणी को विकल्प दशा कहते हैं। वह अनित्य, अशरण आदि षोडश भावनाओं में से किसी एक भावना का भाना, तथा जीवादिक नव तत्त्वों में से किसी एक का स्वरूप चिंतन, ज्ञान, दर्शन-चारित्र आदि पृथक-पृथक गुणों का मनन, तीन मनोरथों में से कोई एक मनोरथ का विचार करने से होती है। यह विकल्प भावना साधु के लिये गुण वाली होने पर भी ध्यानी मुनि को नहीं सुहाती। यद्यपि यह दशा अशुभ में से निकाल कर शुभ में ले जाती है इसलिये गुणदायिनी है। परंतु जो मुनि निर्विकल्प अवस्था को चाहता है, उसे यह अच्छी नहीं लगती। निर्विकल्प चिंतन में आत्मा के गुणों को गुणी से अभिन्न माना जाता है। जो आत्मा है वही ज्ञान है, और जो ज्ञान है वही आत्मा है। रत्नों की ज्योति रत्नों से भिन्न नहीं है। इस अभेदपरक चिंतन को अखंडाद्वैत भी कह सकते हैं। निर्विकल्प दशा से ही आत्मानन्द की प्राप्ति होती है अतः मुनि उसीके रस का अनुभव करे। अर्थात् मन के विकल्पों को हटाकर चितवृत्ति को आत्मोपयोग में केन्द्रित करे।

शुक्ल ध्यान श्रुतावलंबनी रे, ए पण साधन दाव।
वस्तु धर्म उत्सर्ग*में रे, गुण गुणी एक स्वभावोरे--८ मु०

शब्दार्थ—श्रुतावलंबन=ज्ञान का सहारा।

भावार्थ— शुक्ल ध्यान और श्रुत का अवलंबन भी सिद्धि प्राप्ति के लिये अवश्य साधन हैं। परंतु उत्सर्ग मार्ग में तो वस्तु धर्म ही साधन है। अर्थात् गुण एवं गुणी एक स्वभाव वाले हैं। शुक्ल ध्यान और श्रुत का आत्मा से कोई भेद है ही नहीं।-८

*उद्यरंग

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पर सहाय गुण वर्तना रे, वस्तु धर्म न कहाय ।
साध्यरसी तो किम ग्रहे रे, साधु चित्त सहायोरे--९ मु०

शब्दार्थ—पर सहाय=पुद्गलों के सहारे

भावार्थ—पर द्रव्य की सहायता से गुण की प्रवृत्ति होने पर उसे आत्म-धर्म नहीं कहा जाता। आत्म धर्म रूप साध्य को प्रगट करने वाला रसिक मुनि अपने चित्त से पर सहायता पर के उपयोग का आश्रय कैसे ले ?। अर्थात् आत्मा आत्मा की सहायता ले अपने उपयोग में ही रहे ।

आत्मरसी÷ आत्मालयी रे, ध्याता तत्व अनंत ।
स्याद्वाद ज्ञानी मुनि रे, तत्व रमण उपशांतोरे--१० मु०

शब्दार्थ—आत्म रसी=आत्मा के रसिक। आत्मा लयी=स्वभाव में लीन। ध्याता=ध्याने वाला। उपशांत=कषायों को शांत करने वाले।

भावार्थ—आत्मा गुण या स्वभाव के रसिक, आत्मा में लीन, अनंत तत्त्व के ध्याता, स्याद्वाद के ज्ञाता, तत्त्व में रमण करने वाले मुनि कषायों एवं विकल्पों से उपशांत होते हैं।—१०

नवि अपवाद रुचि कदा रे, शिव रसिया अणगार ।
शक्ति यथागम×सेवतां रे, निंदे कर्म प्रचारोरे--११ मु०

शब्दार्थ--अपवाद रुचि=अपवाद सेवन करने की अभिलाषा। अणगार=मुनि। शक्ति=ताकत। यथागम=शास्त्रों में कहा है वैसे। कर्म प्रचार=कर्म बंधन को।

भावार्थ—मुक्ति के रसिक मुनि कभी भी अपवाद-सेवन की रुचि न करे।

ग÷रुची×ग्रथामे

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

यदि कदाचित् शारीरिक और मानसिक परिस्थिति के वश आगमोक्त विधि से अपवादों का सेवन करना पड़े तो भी उसको हेय समझते हैं कर्मों के उदय वश जो अपवाद-प्रवृत्ति हो जाती हैं उन कर्मों की निंदा करते हैं। अर्थात् उत्सर्ग मार्ग पर क्यों चलने की अभिलाषा रखते हैं।--११

साध्य=सिद्ध निज तत्वता रे, पूर्णानन्द समाज।
'देवचन्द्र' पद साधतां रे नमीये ते मुनिराजोरे--मनि-१२

भावार्थ--पूर्णानन्द मयी निजतत्वता रूप साध्य, जिनको सिद्ध हो गया है, अथवा जो उसकी साधना में लगे हैं, उन मुनि महाराजों को श्री देवचन्द्र जी नमस्कार करते हैं।--१२

=शुद्ध

:—:—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ढाल ७ सातवीं "वचनगुप्ति"

"सलूणा" की देशी—

वचन गुप्ति सूधी धरो, वचन ते कर्म सहाय।
उदयाश्रित जे चेतना, निश्चय तेह अपाय-सलूणे-वचन—१

शब्दार्थ—उदयाश्रित=उदय काल के आधीन। अपाय=दोष।

भावार्थ—हे मुनि! वचन गुप्ति को अच्छी तरह धारन करो। क्योंकि वचन मात्र ही कर्म बन्ध का सहायक है। भाषा पर्याप्ति रूप बांधे हुये कर्मो का उदय ही वचन प्रवृत्ति की कारण हैं। चेतन का कर्मों के उदयाधीन होना निश्चय दृष्टि से त्याज्य है,। मोन रूप वचनगुप्ति ही उपादेय है—१

वचन अगोचर आतमा, सिद्ध ते वचनातीत।
सत्ता अस्ति स्वभाव में रे, भाषक भाव अतीत—२ व०

शब्दार्थ—वचन अगोचर=वाणी से कहा नहीं जाता। वचनातीत=वचन से कहा नहीं जाता। सत्ता=ताकत। अस्ति=है। भाषक भाव अतीत=बोलने के भाव से रहित।

भावार्थ—आत्मा वचनों से अगोचर हैं-अर्थात् आत्म स्वरूप वचनों द्वारा नहीं कहा जा सकता। सिद्ध भगवान भी वाणी रहित हैं। क्योंकि वाणी पुद्गल मयी है और सिद्धों का पुद्गलों से कोई संबंध नहीं। अभाषक दशा की सत्ता आत्म स्वभाव में रही हुई है। क्योंकि अपनी आत्मा भी सत्ता में सिद्धों के समान ही है।—२

अनुभव रस आस्वादता, करता आतम ध्यान।
वचन ते बाधक भाव छै रे, न वदे मुनिय निदान-३—व०

शब्दार्थ—निदान=कारण।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ—अनुभव रस का आस्वादन लेते हुये तथा आत्म ध्यान करते हुये मुनि वचन से बिल्कूल न बोले। क्योंकि बोलना आत्म स्वरूप की स्थिति में बाधक है। इसलिये वचन गुप्ति ही श्रेष्ठ है।—३

वचनाश्रव पलटावबा, मुनि साधे स्वाध्याय।
तेह सर्वथा गोपवे, परम महारस थाय—४ व०

शब्दार्थ—वचनाश्रव=वचन द्वारा पापों का ग्रहण। पलटावबा=पलटने के लिये। गोपवे=रोके। परम महारस=आत्मानंद।

भावार्थ—अशुभ वचन रूपी आश्रव से बचने के लिये मुनि स्वाध्याय करे। अर्थात् शुभयोग में प्रवर्तावे। फिर शुभ वचन को भी सर्वथा रोक करके परम महारस रूप आत्मानंदी-मुक्त बन जाये—४

भाषा पुद्गल वर्गणा, ग्रहण निसर्ग उपाधि।
करवा×आतम वीर्य ने, शाने प्रेरे साध-५ व०

शब्दार्थ—वर्गणा=पुद्गलों का समूह। निसर्ग=छोडना। शाने=किसलिये। प्रेरे=प्रेरणा करे।

भावार्थ—भाषा वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करना, तथा उनको छोड़ना, अर्थात् बोलना, आत्म स्वभाव के लिये उपाधि है। फिर मुनि अपनी शक्ति को उस तर्फ (वचन की तर्फ) क्यों लगाये? अर्थात् नहीं लगाये।—५

यावत् वीरज चेतना, आतम गुण संपत्त।
तावत् संवर निर्जरा, आश्रव पर आयत्त। ६ व०

शब्दार्थ—यावत्=जब तक। वीरज चेतना=चैतन्य शक्ति। संपत्त=संप्राप्त। पर आयत्त=पुद्गलाधीन।

×करतां

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ—जब तक चैतन्य शक्ति आत्म गुणों को प्रेरणा देती है, तब तक कर्मों का संवर और निर्जरा होती हैं। इससे विपरीत आत्मा यदि पर सहायक बन जाती है तो नये कर्मों का ग्रहण (आश्रव) हो जाता है। -६

इम जाणी स्थिर संयमी, न करे चपल पलीमंथ।
आत्मानंद आराधतां, अत्तत्थी *निर्ग्रन्थ। -७ व०

शब्दार्थ—चपल पलोमंथ=चपलता रूपी दोष। अत्तत्थी=आत्मार्थी।

भावार्थ—आत्मा और पुद्गल का स्वरूप पिछान करके स्थिर संयमी मुनि चपलता रूपी पलोमंथ (दोष) न करे। आत्मा की अकंप-दशा ही मूल स्वभाव है। चपलता विकार-जन्य है। इसलिये आत्मार्थी निर्ग्रंथ आत्मानंद की आराधना करे।—७

साध्य सिद्ध+परमातमा, तसु साधन उत्सर्ग।
बारे भेदे तप विषे, सकल श्रेष्ठ व्युत्सर्ग। ...८ व०

शब्दार्थ—बारे भेदे=बारह प्रकार के। तपविषे=तपस्या में। व्युत्सर्ग= वोसिराना-छोडना।

भावार्थ—सिद्ध परमात्मा का स्वरूप तो साध्य है, आत्मा साधक है, साधन है उत्सर्ग--अर्थात् परभावों का त्याग। छः बाह्यतथा छः आभ्यंतर इन बारह प्रकार की तपस्याओं में अुत्सर्ग ही सर्व श्रेष्ठ तपस्या है। उत्सर्ग दो प्रकार का है द्रव्य उत्सर्ग और भाव उत्सर्ग। कायोत्सर्ग-भक्तपान उत्सर्ग-उपधि उत्सर्ग तथा गणोत्सर्ग आदि द्रव्य-उत्सर्ग के अंतर्गत हैं। भावोत्सर्ग तीन प्रकार का है १ भवोत्सर्ग,२ कर्मोत्सर्ग, ३ तथा कषायोत्सर्ग। कषाय के त्याग से कर्म का त्याग तथा कर्म के त्याग से भव का त्याग फलित होता है।--८

---

* आज्ञात्थे+शुद्ध

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

समकित गुणठाणे करयो, साध्य अयोगी भाव।
उपादानता तेहनी, गुप्तिरूप स्थिर भाव...९...व०।

शब्दार्थ—समकित गुणठाणे =चौथे गुणस्थान में। अयोगी भाव=योगों से रहित बनने का भाव। उपादानता=मूल कारण।

भावार्थ—सम्यग् दृष्टि गुणस्थान प्राप्त होते ही आत्मा ने अपना साध्य अयोगी भाव स्थिर कर लिया कि मुझे अयोगी बनना है। अुस अयोगी भाव का उपादान (मूलकारण) आत्मा का गुप्ति रूप स्थिर भाव ही है।—९

गुप्तिरूप *गुप्ते रम्या, कारण समिति प्रपंच।
करता स्थिरता ईहता, ग्रहे तत्व गुण संच...१० व०।

शब्दार्थ—प्रपंच=विस्तार। इहता=चाहते हुये। संच=संचय

भावार्थ—आत्मा गुप्ति रूप है अर्थात् योगों की स्थिरता रूप गुप्ति ही आत्मा का स्वभाव है अतः गुप्ति में रमण करे। संयम साधन आदि कारणों से आवश्यकता पड़ने पर पांच समितियों का सेवन करना पड़ता है। अतः समिति रूप प्रपंच प्रवृत्ति को करने पर भी स्थिरता को ही चाहते हैं इस तरह गुप्ति एवं समिति का यथोचित पालन करते हुये मुनि तत्त्व और गुणों का संचय करे। १०

अपवादे उत्सर्गनी, दृष्टि न चूके तेह।
प्रणमे नित्यप्रति भाव सूं, 'देवचंद्र' मुनि तेह सलूणे वचन गुप्तिसूधी धरो...११ व०

भावार्थ—जो मुनि अपवाद स्वरूप पांच समितियों का सेवन करते हुये भी गुप्ति रूप उत्सर्ग मार्ग के लक्ष्य को नहीं भूलते हैं। अर्थात् जिन्हें साध्यरूप गुप्तियों का ही ध्यान हरसमय बना रहता है। उन मुनिजनों को मुनि श्री देवचन्द्र जी भावना पूर्वक नितप्रति वंदना करते हैं।—११

---

*रुची

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ढाल ८ आठवीं काया "गुप्ति"

"अरणिक मुनिवर चाल्या गोचरी" ए देशी

गुप्ति संभारो रे तीजी मुनिवरु, जेहथी परमानंदो जी
मोह टले घनघाती परगले, प्रगटे ज्ञान अमंदोजी...गुप्ति १

शब्दार्थ—घनघाती=ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीय-अंतराय । परगले गलजाय ! अमंद=एक जैसा रहनेवाला ।

भावार्थ—हे मुनि ! तीसरी काया गुप्ति धारन करो । इसके आराधन से ही परमानंद की प्राप्ति होती है । मोह कर्म टलता है । और घनघाती (ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीय-अंतराय) कर्मों का नाश हो जाता है । फिर केवलज्ञान प्रगट हो जाता है—१

किरिया शुभ अशुभ भव बीज छै-तिण तजी तनु व्यापारोजी
चंचल भाव ते आश्रव मूल छे, जीव अचल अविकारो जी गु० २

शब्दार्थ—भवबीज=संसार का कारण । तनुव्यापार=काया योग । अविकार=विकार रहित ।

भावार्थ—शुभ तथा अशुभ दोनों ही क्रियायें संसार के बीज हैं । अतः काया के योग (प्रवर्त्तन) को ही छोड़ो । कायिक चपलता ही आश्रव का मूल है । शुभ कार्यों के लिए किया गया कायिक व्यापार यद्यपि शुभ बंध के लिये होता है । फिर भी है तो बंधन ही । जीव का स्वरूप तो अचल (स्थिर) और अविकारी है ।—२

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रिय विषय सकल नो द्वार ए, बंध हेतु दृढ़ एहो जी।
अभिनव कर्म ग्रहे तनु योग थी, तिण स्थिर करिये देहोजी ३

शब्दार्थ--अभिनव=नये ।

भावार्थ--पांचों इन्द्रियों के समस्त विषयों का द्वार यह शरीर है। और यही कर्म बंध का दृढ कारण है। कायिक योग से नये कर्मों का ग्रहण होता है अतः हे मुनि ! इस कायिक योग को रोक कर देह को स्थिर करो—३

आतमवीर्य स्फुरे परसंग जे, ते कहीये तनुयोगो जी।
चेतन सत्ता रे परम अयोगी छै निर्शल स्थिर उपयोगो जी।४।

शब्दार्थ—स्फुरे=काम करता है। उपयोग=ज्ञान गुण।

भावार्थ—पुद्गलों के संयोग से जो आत्मवीर्य (करण वीर्य) की स्फुरणा होती है, उसका नाम काया-योग है। चेतन की सत्ता तो परम अयोगी है। वह अयोगी दशा निर्मल और स्थिर उपयोग वाली है। —४

यावत कंपन तावत बंध छै, भाख्युं भगवई अंगेजी ।
ते माटे ध्रुव तत्त्व रसे रमे-माहण ध्यान प्रसंगे जी ।५। गु० ।

शब्दार्थ—यावत्= जबतक। कंपन=आत्म प्रदेशों की चंचलता। तावत्= तबतक। ध्रुव=निश्चल। माहण=मुनि।

भावार्थ--श्री भगवती सूत्र में कहा हैं कि आत्म प्रदेशों का जबतक कंपन है (सूक्ष्म हलन चलन) है, तबतक बंधन है। तेरहवें गुणस्थान तक योग (चंचलता) है। योग है वहां बंधन है। इसलिये मुनि शाश्वत-आत्म-तत्त्व-अनुभव रस में रमण करता हुआ ध्यानादिक के प्रसंग में कायिक चपलता का सर्वथा त्याग कर दे।—५

Jain Education International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

बीर्य सहायी रे आतम धर्मनो-अचल सहज अप्रयासो जी।
ते परभाव सहायी किम करे-मुनिबर गुण अबासो जी ।६।गु।

शब्दार्थ--सहायी=सहायक। अप्रयास=प्रयत्न के बिना। गुणआवास= गुणों के घर।

भावार्थ—वीर्य-आत्मा का शक्ति गुण है। वह आत्म-धर्म का सहायक है यह कार्य स्वाभाविक स्थिर तथा अप्रयत्न जन्य है। करणवीर्य अथात् इन्द्रिय जनित वीर्य, (प्रवृति) चल, कृत्रिम, तथा प्रयासजन्य है। इसलिये गुणों के आवास मुनि अपने आत्म-वीर्य को पुद्गलों का सहायक क्यों करे? अर्थात् उसे आत्म धर्म में ही लगावे। आत्मा का स्वभाव में स्थिरता रहना सहज है उसे छोड़कर शरीर एवं इंदियजन्य प्रयास रूप परभाव प्रवृत्तियाँ में मुनि क्यों प्रवृत्त हो। अर्थात् नहीं होते।—६

खंती मुत्ति युति अकिंचनी, शौच ब्रह्म धर धीरोजी।
विषम परीषह सैन्य विदारवा, वीर परम सौंडीरोजी ॥७मु०॥

शब्दार्थ—खंती=क्षमा। मुत्ति=निर्लोभता। अकिचनी=अपरिग्रही। शौच=आंतरिक पवित्रता। ब्रह्मधर=ब्रह्मचारी विषम=कठिन। सौंडीर= शूरवीर!

भावार्थ—क्षमाशील, निर्लोभी, अकिंचनी (परिग्रह रहित) पवित्र, ब्रह्मचारी, और धीर मुनि परीषहों की सेना को जीतने के लिये परम वीर होते हैं ॥ ७ ॥

कर्म पडल दल क्षय करवा रसी, आतम ऋद्धि समृद्धोजी।
देवचन्द्र जिन आणा पालता, वंदो गुरु-गुण वृद्धो जी ॥८मु०॥

शब्दार्थ—कर्म पडल=कर्मो के परदे। गुणवृद्ध=गुणोंसे महान्।

भावार्थ—कर्मो के आवर्ण समूह को क्षय करने के इच्छुक, आत्म-गुणों की ऋद्धि से समृद्ध, जिनाज्ञा के पालक, गुणों से वृद्ध, श्री सद्गुरु को वंदन करने के लिये श्री देवचन्द्रजी महाराज कहते हैं ॥ ८ ॥

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ढाल ९ नवमी "मुनि गुणास्तुति

"सुमति चरण कज आतम अरपणा" एदेशी"

धर्म धुरंधर मुनिवर ×सेविये, नाण चरण सम्पन्न । सुगुणनर।
इंद्रिय भोगतजी निज सुखभजी, भवचारक उदविन्न सु०ध०१।

शब्दार्थ—सम्पन्न=सहित। भवचारक=संसार रूपी केद। उद्विग्न= खेद पाये हुए।

भावार्थ—हे सद्गुणी मानव ! धर्म की धुरा को धारन करनेवाले, ज्ञान और चारित्र से युक्त, इन्द्रियों के सुख को छोड़कर आत्मिक सुख के भोक्ता संसार रूपी चारक (जेल) से खिन्न मुनिजनों की सेवा करो ॥ १ ॥

द्रव्य भाव साची श्रद्धा धरी, परिहरी शंका दोष । सु० ।
कारण कारज साधन आदरी, साधे*साध्य संतोष ।सु०।२

शब्दार्थ—श्रद्धा=विश्वास। संतोष=संतोषपूर्वक।

भावार्थ—सुदेव, सुगुरु, सुधर्म पर सच्ची श्रद्धा होना द्रव्य श्रद्धा है और अपनी आत्मा ही देव, आत्मा ही गुरु और आत्मा ही धर्म है, ऐसी श्रद्धा होना भाव श्रद्धा है। शंका, कांक्षा आदि दोषों को टाल करके मुनि दोनों प्रकार की श्रद्धा धारण करते हैं। श्रद्धा प्राप्ति के चार कारण हैं, १ निमित्त कारण, २ उपादान कारण, ३ असाधारण कारण, ४ और अपेक्षा कारण। निमित्त कारण अनेक हो सकते हैं—जिन दर्शन जिनोपदेश श्रवण आदि २। उपादान कारण केवल अपनी आत्मा ही है। असाधारण कारण वह है, जिस योगाचारण से आत्मा का

×सलहिये

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कार्य सिद्ध होता हो। अपेक्षा कारण का अर्थ है आवश्यकता—जैसे मोक्ष सिद्धि में मनुष्यभव और वज्र ऋषभ नाराच संघयण (शरीर की सुदृढ़ रचना) की पूर्ण अपेक्षा है। इनमें से जिन-जिन कारणों से आत्मा को सम्यक्त्व प्राप्त हुआ, वह एक कार्य हो चुका। यही समकित रूपी कार्य चारित्ररूपी कार्य का कारण बन जाता है। चारित्ररूपी कार्य मुक्ति का कारण है ही। इस प्रकार कारण और कार्य को साधनरूप में स्वीकार करके मुनि संतोषपूर्वक अपने साध्य को साधे ॥ २ ॥

गुण पर्याये वस्तु परखता, सीख उभय भंडार। सुगुणनर।
परिणति शक्ति स्वरूपे परिणमी, करता तसु व्यवहार। सु० ३ ।धा

शब्दार्थ—गुण पर्याये=गुण और अवस्थाओं से। उभय=दोनों

भावार्थ—गुण तथा पर्याय से वस्तु को परखनेवाले, ग्रहण शिक्षा (व्रतादि ग्रहण करना) और आसेवन शिक्षा (व्रतका पालन) के धारन करने वाले, आत्मा की परिणमन शक्ति के स्वरूप में ही परिणमन करनेवाले, मुनि व्यवहार (आचार) भी तदनुसार ही करेंगे। ३।

लोकसन्ना वितिगच्छा वारता, करता संयम वृद्धि। सुगुण।
मूल उत्तर गुण सर्व संभारता, करता* आत्म शुध्दि। सु०४धा

शब्दार्थ—लोकसन्ना=लोकप्रवाह। वितिगिच्छा=धर्म के फल में संदेह।

भावार्थ—लोक संज्ञा अर्थात् जो गडुरिया प्रवाह रूप विवेक शून्य लोकाचार हो उसे तथा विचिकित्सा अर्थात् करनी के फलों में संदेह हो उसे छोड़कर संयम की वृद्धि करे। मूल गुण अर्थात् पांचमहाव्रत तथा उत्तर गुण अर्थात् दस पच्च क्खाणदि को संभालता हुआ मुनि आतमा की शुद्धि करे।—४

---

*धरताधरी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रुतधारी श्रुतधर-निश्रा-रसी, वशी करया त्रिक योग। सु०।
अभ्यासी अभिनव श्रुत सारना, अविनाशी उपयोग।सु०।५।ध०

शब्दार्थ-श्रुतधारी=ज्ञानी। श्रुतधरनिश्रा=बहु श्रुती के आधीन। अविनाशी= अचल। ५।

भावार्थ—मुनिस्वयं श्रुतधारी (ज्ञानी) होते हुए भी बहुश्रुती के निश्रा (आधीन) रहनेवाला, तीनों योगों को वश करनेवाला; नये-नये ज्ञान के सार का अभ्यास करनेवाला; अविनाशी उपयोग वाला बने। ॥ ५ ॥

द्रव्य भाव आश्रव मल टालता, पालता संयम सार।
सांची जैन क्रिया संभारता, गालता कर्म विकार।सु०।६ध०।

भावार्थ—कर्म पुदगलों के ग्रहणरूप द्रव्य आश्रव; तथा द्रव्य आश्रव के कारण रूप मिथ्यात्वादि पांच भाव आश्रवों के मल को टालते हुए; संयम को पालते हुए जैनमतानुसार सची क्रियायें शुभ प्रवृत्ति विधिपूर्वक करते हुए मुनि कर्म विकारों को गाल देते हैं। ६।

सामायक आदिकगुण श्रेणी में, रमता चढ़ते रे भाव।सुगुणा
तीनलोक थी भिन्न त्रिलोक में, पूजनीक जसु पाव।सु०।७ध०।

शब्दार्थ...पूजनीक=पूज्य। जसु=जिसके। पाव=चरण।

भावार्थ—समभाव रूपी गुण श्रेणी में उत्तरोत्तर बढ़ते हुए भावों में रमते हुए; तीनलोक से भिन्न अर्थात संसारी जीवों से भिन्न प्रकार की शुद्ध आत्म परिणतिवाले, मुनियों के चरण त्रिलोकी पूजित हैं। ७।

अधिक गुणी निज तुल्य गुणी थकी, मिलता जे मुनिराज।
परम समाधि निधि भव जलधि ना, तारण तरण जहाज।सु०।८ध।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - अपने से अधिक गुणी के साथ तथा समान गुणवालेके साथ वसने वाले; परम समाधि के भण्डार; मुनि भवसमुद्र से तरने और तराने के लिये जहाज़ के समान हैं। ८।

समकितवंत संयम गुण ईहता, ते धरवा असमर्थ। सु०।
संवेग पक्षी भावे शोभता, कहेता साचो रे अर्थ। सु०।९ध०।

शब्दार्थ—ईहता=चाहते हुए।

भावार्थ—सम्यग् ज्ञान और क्रिया युक्त मुनियों की स्तुति के पश्चात संवेग पक्षी मुनियों का वर्णन करते हैं। ये मुनि समकित सहित हैं। और संयम के गुणों को चाहते हैं, परन्तु वर्तमान में किसी कारण से उन गुणों को धारण करनेमें असमर्थ हैं। सम्वेग (वैराग्य) पक्ष के भाव से शोभित हैं। चाहे आप नहीं पालते हैं, परन्तु प्ररूपणा तो सच्ची करते हैं॥ ९॥

आप प्रशंसाए नवी माचता, राचता मुनि गुण रंग।सु०।
अप्रमत्त मुनि श्रुत तत्त्व पूछवा, सेवे जासु अभंग। १०। ध०।

शब्दार्थ—आप प्रशंसाए=निज की स्तुति में। अप्रमत्त=अप्रमादी। जासु=उन्हे अभंग=निरंतर।

भावार्थ—वे अपनी प्रशंसा सुनकर फूलते नहीं हैं। मुनि के गुणरूपी रंग में रंगे हुए हैं; रुची रखते हैं। श्रुत-तत्त्व प्राप्त करने के लिये किसी से कुछ पूछना पड़े तो सदा तैयार (अप्रमत्त) हैं। और विशिष्ट श्रुतधारी पुरुष की अभंग भावों से निरन्तर सेवा करते हैं। १०।

सद्दहणा आगम अनुमोदना, गुणकरी संयम चाल।सु०।
व्यवहारे साची ते साचवे, आयति लाभ संभाल। सु०।११।ध।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ— सद्दहणा=श्रद्धा। आगम=शास्त्र की। अनुमोदना=प्रशंसा। आयति=भविष्यकाल में।

भावार्थ...चाहे आप पालन नहीं कर सकता हो फिर भी आगमों के प्रति निष्ठा तो पूरी रखे। तथा कोई पूर्णतया पालन करनेवाला हो; उसकी अनुमोदन (प्रशंसा) करता रहे। ये दो बातें संयम मार्ग में बड़ी गुण करनेवाली है। आगमों की निष्ठा से मुनि क सम्मुख आदर्श सही रहेंगा। तथा गुणीजनों की अनुमोदना से अपनी कमजोरियां हटाने की प्रेरणा मिलेगी। मुनि के वेष तथा वेषोचित क्रियाओं से भी महान लाभ है। अपने-आप में भाव चरित्र नहीं है। यह स्पष्ट समझते हुए भी द्रव्य क्रियायें करते रहने से भविष्य में भाव चारित्र आने की सम्भावना रहती है। ११।

दुक्करकारी थी अधिका कह्या, बृहत्कल्प व्यवहार।सु०।
उपदेशमाला भगवई अंग में, गीतारथ अधिकार।सु०।१२।०ध।

शब्दार्थ...दुक्करकारी=कठिन क्रिया करनेवाले। अधिका=श्रेष्ठ। गीतार्थ=ज्ञानी। अधिकार=वर्णन।

भावार्थ--बृहत कल्प-व्यवहार, भगवती; तथा उपदेशमाला आदि में जहां गीतार्थ का अधिकार है; वहां मास-मास की उतकृष्ट तपस्यायें तथा दुष्कर क्रियायें करनेवालों से भी अल्पक्रिया वाले गीतार्थ मुनियों को श्रेष्ठ गिनाया है। अज्ञानी पुरुष जो कर्म अनेक वर्षोंमें खपाता है; उससे भी अधिक कर्म ज्ञानी क्षण मात्र में खपा देता है।

भाव चरण थानक फरस्या बिना, न हुवे संयम धर्म।सु०।
तो शाने झुंठ ते उच्चरे-जे जाणे प्रवचन मर्म।सु०।१३।ध०।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—चरण थानक=चारित्र के परिणामों के स्थान। झुठुं=असत्य ।

शब्दार्थ—संयम के स्थानों को स्पर्शे विना भाव चारित्र नहीं हो सकता। इसलिये जिनवाणी का मर्म जानने वाला मुनि झूठ ही क्यों कहेगा, कि मैं भाव चारित्र वाला हूँ ।—१३

जस लोभे जन* सम्मत थायवा×, पर मन+ रंजन काज ।सु।
ज्ञान क्रिया द्रव्यतः विधि साचवे, तेह नहीं मुनिराज ।सु १४ध।

शब्दार्थ—जसलोभे=यशोलिप्सा से। जन सम्मत=लोकमान्य । परमन= लोगों के मन। तेह=वह

भावार्थ— भाव से नहीं, किंतु द्रव्य से भी ज्ञानाभ्यास तथा चारित्र की क्रियायें करते समय यदि यह भावना बनी रही कि इससे लोग मुझे पंडित और चारित्रवान कहेंगे। तथा अच्छे व्याख्यान से लोगों का चित्तरंजन करूंगा तो मुझे लोगों का समर्थन मिलता रहेगा। इस उद्देश्य से उपरोक्त द्रव्य (बाहरी) विधियाँ करने पर भी वह मुनि नहीं है ।—१४

बाह्य दया एकांते उपदिशे, श्रुत आम्नाय बिहीन। सु
बग परि ठगता मूरख लोकने, बहु भमशे ते दीन। सु।१५।ध।

शब्दार्थ—एकांते=सिर्फ। उपदिशे=कहते हैं। श्रुत आम्नाय=ज्ञान की परंपरा। विहीन=रहित। बग परे=बगले के समान। भमसे=संसार में जन्म ण करेंगे। दीन=गरीब ।

भावार्थ—आत्म गुणों की रक्षा रूप जो भाव दया है, उसे पहचाने बिना एकांत रूप से बाह्य दया (जीवरक्षा) का उपदेश देनेवाले श्रुत आम्नाय

---

*निज×थापवा+जन

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(परंपरा) से हीन हैं। मीन जैसे मूढ लोगों को बगले के समान ठगने वाले दीन मुनि संसार में बहुत काल पर्यंत परिभ्रमण (जन्म मरण) करेंगे।—१५

अध्यातम परिणति साधन ग्रही, उचित वहे आचार। सु०।
जिन आणा अविराधक पुरुष जे, धन्य तेनो अवतार।सु०१६ध।

शब्दार्थ—ग्रही=ग्रहण करके। उचित=योग्य। अविराधक=आराधना करनेवाला। अवतार=जन्म।

भावार्थ—आध्यात्मिक परिणतिके साधनों को ग्रहण करके जो उचित आचार का पालन करता है। तथा जिनाज्ञा का आराधना करता है, उस अविराधक मुनि का मानव-जन्म सफल है।—१६

द्रव्य क्रिया नैमित्तिक हेतु छै, भावधर्म लयलीन। सु०।
निरुपाधिकता जे निज अंशनी, माने लाभ नवीन।सु०।१७ध।

शब्दार्थ—निरुपाधिकता=आत्म प्रदेशों की उज्वलता। नवीन=नया।

भावार्थ—द्रव्य क्रियायें तो केवल निमित्त कारण हैं। भावधर्म तो आत्मा में लीन होना है। भावना युक्त द्रव्य क्रियायें करने से अपनी आत्मा की जितने अंशों में निरुपाधिकता (निर्जरा से उत्पन्न उज्वलता,) स्वभाव में स्थिरता हो, मुनि उसे नया अपूर्व लाभ समझे।—१७

परिणति दोष भणी जे निंदता, कहेता परिणति धर्म। सु०।
योग ग्रंथ ना भाव प्रकाशता, तेह विदारे हो कर्म।सु०१८ध।

शब्दार्थ—परिणतिदोष=विभाव दशा। परिणतिधर्म=स्वभाव दशा। योगग्रंथ=योगदृष्टि समुच्चय, योगशास्त्र, ज्ञानसार, अध्यात्मसार, अध्यात्म कल्पद्रुम आदि। विदारे=क्षय करे।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ—विभाव परिणति की निंदा करते हुये, स्वभाव परिणति को धर्म बतलाते हुये, योगाभ्यास संबंधी ग्रन्थों के भावों पर प्रकाश डालते हुये, मुनि अपने पूर्व संचित कर्मों को नाश करते हैं।—१८

अल्प क्रिया पण उपकारी पणे, ज्ञानी साधे हो सिद्ध। सु०।
देवचन्द्र सुविहित मुनि वृन्दने, प्रणम्या सयल समृद्ध।सु०१९ध।

शब्दार्थ— अल्पक्रिया=थोड़ी क्रिया करने वाले। सुविहित=अच्छे। सयल= सारी।

भावार्थ—स्वयं अल्प क्रिया करने वाले होते हुये भी ज्ञानी मुनि अपने सदुप देशों द्वारा परोपकार करते हुये मुक्ति को साध लेते हैं। सुविहित (सदनुष्ठानी) मुनि समूह को प्रणाम करने से ही आत्मा के गुण रूपी सकल समृद्धि प्राप्त हो जाती है। यों श्री देवचन्द्रजी महाराज कहते हैं।—१९

—०—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

"प्रशस्ति"

"कलश"

ते तरिया रे भाई ते तरिया, जे जिन शासन अनुसरिया जी।
जेहकरेसुविहितमुनिकिरिया,ज्ञानामृतरसदरियाजी-तेतरिया ।१।

भावार्थ-वे संसार समुद्र से तरगये। भाई! वे ही तर गये। जिन्होंने जिन शासन का अनुसरण किया। जो वर्तमान ज्ञानामृत रूपी रस के समुद्र, सुविहित (भले) मुनि जनोचित क्रिया करने वाले तर गये।—१

विषय कषाय सहु परिहरिया, उत्तम समता वरिया जी।
शील सन्नाह थकी पाखरिया, भव समुद्र जल तरिया जी।२ते।

भावार्थ—पांच इन्द्रियों के २३ विषयों तथा क्रोध कषायों को छोड़कर उत्तम समता को वरने वाले, मोह और काम को जीतने वाले, ब्रह्मचर्य का वख्तर पहनने वाले, मुनि भवसमुद्र से तर गये।—२

समिति गुप्ति सूँ जे परवरिया, आत्मानन्दे भरिया जी।
अश्रव द्वार सकल आवरिया, वर संवर संवरिया जी। ३ ते०।

भावार्थ--पांच समिति और तीन गुप्ति से सहित, आत्मानंद में मग्न, पांच आश्रव द्वारों को रोकने वाले, पांच संवरों से सहित मुनि तर गये।-३

खरतर मुनि आचरणा चरिया, राजसागर गुण गिरुआ जी।
ज्ञानधर्म तप ध्याने वरिया*, श्रुत रहस्य ना दरिया जी।४ते।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ=खरतर गच्छ की आचार परम्परा को पालन करने वाले, गुणों से महान, राजसागर नाम के उपाध्याय हुये। उनके शिष्य श्री ज्ञानधर्म नामक उपाध्याय भी श्रुत रहस्य के सागर तप और ध्यान से युक्त हुये।--४

दीपचन्द्र पाठक पद धरिया, विनय रयण सागरिया जी।
देवचन्द्र मुनिगुण उच्चरिया, कर्म अरि निर्जरिया जी।५ ते०।

भावार्थ—उनके बाद श्री दीपचन्द्र नामक उपाध्याय विनय रूपी गुण के सागर हुये। उनके शिष्य श्री देवचन्द्र ने इन समझायों की रचना द्वारा मुनि गुणों की स्तुति करते हुये कर्मों की निर्जरा की।–५

सुरगिरि सुंदर जिनवर मंदिर, शोभित नगर सवाई जी।
नवानगर चोमास करीने, मुनिवर गुण स्तुति गाई जी।६।ते०।

भावार्थ----मेरुगिरी के तुल्य उंचाईवाले तथा उसके समान सुन्दर जिन मन्दिरों से शोभित नवानगर (जामनगर) में चौमासा किया, तब यह मुनि गुणों की स्तवना बनाई ॥ ६ ॥

मुनिगुण माला गुणे विशाला, गावो ढाल रसाला जी।
चोविह संघ समण गुण थुणतां, थास्यो लील भूवाला जी।७ते।

भावार्थ—मुनियों के गुणों की विशाल माला के सदृश सरस ढाल को गाओ। हे चतुर्विधसंघ ! तुम मुनियों के गुणों की स्तवना करो जिससे आत्म सम्पति के भोक्ता-अधिपति बनोगे।

कलश—**इम द्रव्य भावे सुमति सुमता गुप्ति गुप्ता मुनिवरा।**
निर्मोह निर्मल शुद्ध चिद्घन तत्व साधन तत्परा।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

देवचन्द अरिहा आण विचर्यो विस्तरी जस संपदा ।
नीग्रंथ वंदन स्तवन करतां परममंगल सुख सदा ।८।

भावार्थ--इस प्रकार द्रव्य भाव से समिति गुप्ति से युक्त मुनिराज निर्मोही निर्मल और विशुद्ध आत्मतत्त्व की साधना में तत्पर रहते हैं देवों में चन्द्रके सदृश अर्हन्त भगवान की आज्ञा में उनके विचरने से यश सम्पदा का विस्तार हुआ निग्रन्थों को बंदना-स्तवना करने सें सर्वदा परम मंगल सुख प्राप्त होगा ।

इति श्री पण्डित देवचन्द्र जी विरचित "अष्ट प्रवचन माता" की
सज्झाय मूल और भावार्थ सहित सम्पूर्ण

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

अष्ट प्रवचन माता सज्झाय

बालावबोध-टबा रूपी गुजरातो अर्थ

दोहा

१...पुण्य करणी रूप कल्पवृक्षनी घटा जिहां प्रगटी छें एहवी उत्तरकु रूक्षेत्र नी भूमिका रूप, वरते सुन्दर पृथ्वी; तेनें विषे अध्यातम रस रूप चन्द्रकंला नां किरणरूप जिनवाणी ने नमुं छूं ।

२...सार ते रूड़ा श्रमण जे मुनि तेना गुण तेनी भावना ना अवदात ते कारण एवी प्रवचन माता, ने देशीइ गाइस्युं ।

३...जिम माता पुत्र ने शोभनकारी तिम ए ८ प्रवचन माताइ मुनि शोभे चारित्र नुं गुण वधारे; मुक्ति सुख आपे एहवी प्रवचन माता छे ।

४—भाव थी अयोगी ते सिद्धता करण रूचि मुनि गुप्ति धरें, जो गुप्ति इं रही सकें नहीं तो समितिइं विचरे ।

५—निश्चय थी एक संवर मई गुप्ती कही छइं अडने संवर ते निर्जरा रूप छें ते पण व्यवहार थी समिति थी हुई ।

६—द्रव्यें द्रव्य थी चारित्र भावे भाव थी चारित्र द्रव्य थो क्रिया अने भाव थी ज्ञान दृष्टि, ए रीतें मुनि मुक्ति संपदा पामें ।

७—आत्म गुण ना प्राग्भाव थी, साधक नो जे परिणाम ते समिति अने गुप्ति कही छै मुक्ति थानक पामें तारें साध्यनी सिद्धि थाइ ।

८—निश्चें चारित्ररूचि थई; समिति गुप्तिवंत साधु; परम् अहिंसक भावथी निरूपाधि पणुपामें ।

९—मोक्ष पद पामवा; जे उजमाल थया, मुनि ते कर्मने भेदे; नाम दयावंत जे मुनि ना गुण गाऊँ छुं ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१--इरिया समिति सज्झाय

१ प्रथम महाव्रतनी भावना कहे छें, संवर ने कारणें कही छें, समता-रस गुण नुं घर। हे मुनि इर्या समिति संभारो ! जेथी आश्रव थाइं, एहवी -काय योग नी चपलता दुष्ट छे, ते वारो।

२...काय गुप्ति निश्चें थकी, ते व्यवहारे प्रथम समिति छे, आगम रीते चालवुं ते इर्या समिति कहीइं।

३...ज्ञान ध्यान सझाय मां, मुनि बैठा छे थिरपणें तेनें स्यें कारणे चपलाइ थाइं, अनुभव ध्यान रस नुं सुख रूप मुनि नें राज्य छइं।

४ :मुनि उपासरा थी ४ कारणें बाहर निकले छें देहरें १ विहारें २ गोचरी ३थंडीले ४

५--उत्कृष्ट चारित्रें करी संवरना धरनारा, केवलीइं दीठा ते सर्व पदारथना जाण तेथी पवित्र समता रूचि उपजें मार्टे ते पदार्थज्ञान मुनि ने इष्ट छइं।

६--ज्ञान दिशाइं भाव नी थिरताइं राग बधें, अनइ ज्ञान विना प्रमाद वधइ माटें वीतरागपणाने इच्छता थका मुनि आणंद मां विचरें।

७--आ शरीर संसार नुं मूल छें, तेनी पुष्टि रूप आहार छें, यावत् अयोगी पणु न थाइं त्यां सुधी अनादीकाल नो आहार छइं।

८--प्रक्षेप आहारें निहार छे ए शरीर नो धर्म छें मार्टे धन्य छे अशरीरी सिद्धने जिहां निश्चल पणु छें।

९--पर जे आहार, तेनी परणतीइं चपलाई करइं छें उनमत्तपणुं मार्टे के-वारे ए आहार छंडास्यें, इम विचारी ने कारणें कहतां कारणइं मुनि गोचरी करे छें।

१०--समतावंत दयालुताइं निष्गृह शरीरें निरागपणइ गृधता रहीत गोचरी करें। हस्ती चाल्यें चालता महाभाग्य ना धणी मुनि विचरे छइं।

११-परम आनंद रस अनुभवता, स्वाभाविक गुणें रमता, देव मां चंद्र तुल्य ए मुनि वंदतां भवसमुद्र नो पार पामीइं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

२—भाषा समिति स्वाध्याय

१---साधु जी बीजी समिती धरो, निर्दोष वचन नो प्रकाश निश्चय थी गुप्ति नो प्रकाश, व्यवहार मार्ग नो विलास ते भाषा समिति कहाइ ।

२---सत्य वचन नु' मूल ए भाषा ते बीजा महाव्रत नी भावना छइं जे थकी भाव अहिंसक पणु वधें सर्व थी संवरपणा ने अनुकूल ए भाषा छे ।

३---मौनधारी मुनि छे ते आश्रव नु घर एहवुं वचन बोले नहीं, जेहथी ज्ञान ध्यान नी आचरणा नु साध थाइं तेहवो उपदेश दीइ ।

४---जे भाषा पर्याप्ति नो उदय थयो तेथी वचने करी श्रुत ने अनुसारें सज्झाय करें तेथी अर्थरूप बोध नो प्रागभाव प्रगटें तेणे करी जगत ने उपगार करे छइं ।

५—मुनि आत्मवीर्य थी परनुं ग्रहण अने त्याग ते न करें पर मां न पेसें, ते भणी वचन गुप्तें रहें ए मुनि नो निश्चय मार्ग छइं ।

६—जे आश्रव थानक नो योग हतो ते निर्जरा रूप कर्यो लोह थी जे कंचन थाइं तिम ज्ञान रूप साधन साधतां मुनि सर्व निर्जरा रूप करें ।

७—पोताने अनें परनें हितमाटें वाचनादिक ५ प्रकारें सज्झाय करें ते सारू, आहार अने वस्त्र पात्र औषध करे ते सर्व अपवाद पदें छइं ।

८—जिन गुण नी स्तवना अने आत्म तत्व नें देखवा भाषा नो रोध करी उच्चरंग थी भाषा गुप्ति धरइ अनें भाषा समितिइं देसना दीइं ते भव्य नें प्रतिबोधव अनें आत्मिक ज्ञान करवा ते वाचना सझाय कहीइ ।

९—७नय, अनेक गमा, ७ भंगी ४ निक्षेपा, ते स्याद्वाद मिलीइं आत्महित, प्रगटें एवी श्रुत वाणी, सोल बोलें सहीत १० प्रकारें सत्य वलि ४ गुणे मलती ते आक्षेपणी प्रमुख ४ गुण, ए अनुयोगद्वार सूत्रें कह्या

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१०—प्रथम सूत्रानुयोग, बीजो अर्थानुयोग ते नियुक्तिइं सहीत हुइं ए व्यवहार भाष्यें नयें करी भाव्यो छैं, इम ज्ञानी वचन बोले छैं ।

११—ज्ञानरूप समता समुद्रें भर्या छैं संवरपणु पाम्या, दया ना भंडार, तत्व पाम्या ते आणंदरस चाखता चरण गुण धरता मुनि वंदीइ ।

१२—मोहनों उदय छें पण अमोही जेहका छें, निर्मल पोतानु साध्य तेनी लय मां लीन, वली ज्ञान रूप अमृत रसें पुष्ट एहवा मुनि नें देवचंदजी वंदे छे अथवा इंद्र वंदे छइ ।

३—एषणा समिती सज्झाय

१—हवें त्रीजी एषणा समिती पंच महाव्रत नुंए मूल छे, अने निश्चय थी अनाहारी अने अपवादे अनाहारी छैं ए एषणा समिति मुनि चित्त मां धरो ।

२—चेतन नी चैतन्यता छे ते स्वसंगी छें पण परसंगी नथी माटें परनें सनमुख न करें, एहवा आत्म रती मुनि छैं ।

३—एषणाइं आहार लीइं ते अशनादिक ना पुद्गल काया ग्रहें छें ए आत्मा नो धर्म नथी माहरो आत्मा जाणग छैं कर्त्ता भोक्ता छें एहवो हुं एक माहरो पिण कायादिक नहीं ए तत्व ।

४—चलवीर्य पणे संधी मले ते अनभिसंधि पुद्गल आत्म शक्ति रोधें अनेअभाव ते शास्वत नहीं पण अभिसंधिवीर्य वाला ते ज्ञानानंदी मुनि ते पर भावरूप पुद्गल ग्रहे नहीं याचे नहीं ।

५—इम पर पुद्गल ना त्यागी संवरी मुनि पुगद्ल खंध न ग्रहे, माटें चारित्र साधवा सारू आहार लीइं छे।

६—आत्म तत्व नी अनंतता ज्ञान विना जणाय नहीं ते आत्म तत्व प्रकट करवा सिद्धान्त भणवुं ए उपाय छें ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

७—ज्ञान देह थी आ शरीर छें ते आहार थी बलवंत रहें, साध्य जे मुक्ति पद ते अधुरें कारणें मुनि आहार तजे नहीं ।

८—देह अनुयाई वीर्य तेनो कर्त्ता आहार तेनो संयोग ते लेवो, ते वृद्धना हाथ मां लाकड़ी रूप जाणी नें आहारादिक भोग मां लावें ।

९—ज्यां सुधी क्रिया ज्ञान साधकता मां पीड़ा न उपजें त्यां सूधी आहार लीइं नहीं, अने क्षुधा उदयें बाधकपणु थाइ ते परणती टालवा सारू मुनि आहार करें ।

१०—द्रव्य ना के० आहार ना ४७ दोष तजी नें नीरागपणें जोइ विचारी नें मूर्छा विना भमरा परें आहार लीइं ।

११—तत्व रुचि; तत्व नुं घर, तत्व रसिया मुनि वेदनी ना उदयें आहार लीइं पण ते ज्ञानी मुनी कष्ट वैतरुं जांणें

१२—कदाचित् आहार न मलें तो पण घणी निर्जरा मानें, कदापि आहार पांमें तो ते मांहें व्यापें नहीं, माचें नहीं एहवा मोटा मुनि ।

१३—इम अणाहारी पदनी साधना करता समतारूप अमृत नो कंद पाप ने भेदता उपशम योगी एहवा मुनी तेहनें इंद्र वंदे छें ।

.....
.....

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

४–आयाणभंड निक्षेपना समिति की सझाय

१—चौथी समिती चारगति टालनारी प्रभुइं कही, परमदयाल मुनिइं ग्रही, ज्ञान ठकुराईइं चाखी छइं।

२—एवी ए समिति छे ते हे सहज संवेगी मुनि! तमो ए मांहे सदा रेहज्यों, आत्म साधन माटें ए संवर नुं आराधन छें, भव समुद्र तरवा नावा छें।

३—जे आत्म तत्व ना वंछक हस्यें, ते सिद्धान्त ने साखी करीने सर्व परीग्रह संग ने दूर करीनें ध्यान नी वांछा वाला हज्यो।

४—पांच आश्रव त्याग ए संवर पांच नी ए भावना छें, निरुपाधी पणु, अप्रमादी पणुं परीग्रह त्याग असंगीपणें रहेवुं ए व्यवहार छें।

५—जे परभाव रूप पुद्गल रूप १४ उपगरण छें ते मुनी स्यामाटें राखे छें शरीर नो मोह नथी, कोई कालें लोभ नथी रत्नत्रयी संपदा वाला मुनि छें।

६—तेनो उत्तर लखे छें आत्म अहिंसक करवा सारू द्रव्य थी जीवदया पालवासारू १४ उपगरण धरे छइं संयम योग नें समाधि राखवा सारू

७—मोक्ष साधन नुं मूल ज्ञान छें, तेहनुं हेतु सज्झाय ध्यान छें मार्टे एषणा नां १० दोष जोइ नें जतनाइं पात्र मां वोहरी नें सज्झाय ध्यान करवा आहार करइं।

८—बालक योवनावंत पुरुष स्त्रीयो मुनि नें नग्न देखी दुगंछा करें मांटें मुनि चोलपट राखें अने शुद्ध धर्म उपदेशें।

९—डंस मसा सीत उष्ण ए परीसहें ध्यान मां समाधिना रहें मार्टें मुर्छा-रहित पणें कपड़ा कांबली धरे निराबाध पणें।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१०—जलनो लेप अलेप तथा उंडपणु नदीनुं जोवा सारू मुनि दंड राखें छइं दशवैकलिक भगवती सूत्र नी साक्षें डांडो मुनि राखें शरीर ओठंभा मार्टे ।

११—लघु त्रस बेइन्द्रीयादीक जीव सचित्त रज प्रमुख ते जीवनें संघटें दुख उपजें ते वारवा सारू देखी पूंजी नें मुनि वसति प्रमुख बावरें ए मुनि नो प्रथम वट्ट छें ।

१२--पुद्गल खंध तृण वस्त्रादिक नुं लेवुं मुकवुं ते द्रव्य ने विषें जयणाइं ए द्रव्य थी अनें भाव थी आत्मा नी नव नवी परणतें समिती नो प्रकाशें ग्रहणपणुं छे ।

१३—ते मांहें जे बाधकता थाइं ते पण द्वेष रहीत तजें साधक पणुं राग रहीत ग्रहें पूर्व गुण ना रक्षक पुष्टि पणें मुक्ति पद नीपजें ते काम करें ।

१४—संयम श्रेणें चढता थका, कर्म कलंक ने हरता थका एकत्वपणें समतानें धरता थका निश्चयें तत्वरमणपणुं पांमें ।

१५—विश्व उपगारी भव्य ना तारू लायक पूर्णानंदी एहवा मुनिना चरण कमल इंद्र सरीखा वंदे ।

परिष्ठापनिका समिति की सज्झाय

१—पांचमी समिति रूड़ी पारिष्ठापनिका नामें उत्कृष्टो अहिंसक धर्म धारणी सुकमाल दया परिणाम रूप छें

२—हे मुनी सदैव ए सुखदायक सेवज्यो, संयम थिरता भावें ए समिती थी शोभे उज्जल संवर प्रगटें

३—शरीरने रागें चपलताई वधें, दुष्ट कषाय प्रगटें मार्टे शरीर नो राग तजी ध्यान मां रमइ ज्ञान चारित्र नें पसाइं ।

४—जिहां शरीर तिहां मैंल थाय नें मेल ठालवो पण छ काय ना जीव नी जतनाइं दुगंछकता टालवी ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

५—अजतनाइं संयम नें बाधकपणुं थाइं, आत्म गुणनी विराधना थाइं, प्रभु आणा विराधक थाइं माटें उपधि आहार मुनि परठवें, ते आगल 'लाभा-लाभ जोइनें ।

६—आहार बध्यो होइं तारें मुनि परठवें अने पोताने कोठें अप्रमादी पणें शरीर नें अरागें आहार मूर्छाबिना वावरवो ते पण धीर मुनि नें अपवाद ते व्यवहारें परिठावण जाणवुं ।

७—वलि द्रव्य थी कोई देखें नहीं इत्यादि दूषण तजी नें राग द्वेष वरजीनें विधिसहित परठवें, स्या माटे कोई देखे तो लघुता पणुं थाइं ।

८—कल्पातीत यथालंदी कल्प वाला मुनी वलि जिनकल्पी, तेहने तो आहारादिक परठववा पणु नथी एक नीहार परठवणा छइं; ते पण अलप छें ।

९—रात्रि समें मूत्रादिक परठवें ते मांडला मांहे विधिसहित, थविरकल्पी नो ए व्यवहार छें, ग्लान मंदवाडीया नें कामें पण ए रीत छें

१०—ए द्रव्य परिठावणा कही हवे भावें परठवे ते जे परणाम नें बाधक थाइं ते मादकता बिना द्वेष रहित सर्व विभाव दशा ने परठवें ।

११—आत्म परिणति तत्वमई करें विभाव तजें द्रव्य थी समीति पण भाव-सारू धरें, ए मुनि नो स्वभाव छें ।

१२—पांच समितिइं समिता, परिणाम थी क्षमा ना कोश ते भण्डार छें रोस पण नथी, भावनाइं पवित्र छें, संयम साधना सकल गुण नी पुष्टी करें ।

१३—साध्य ना रसिया आत्मतत्वें तन्मयो छें, निःकपट पणें उछरंग धरता; योग १ क्रिया २ फल ३ भाव ४ ए ४ थी ठगाई हीं ए अवंचकता; शुद्ध अनु-भव सुखदाइक छें जेहने ।

१४—प्रभु आणा युक्त ज्ञानी दमी निश्चय थी इंद्री निग्रहें युक्त देवचन्द्र जी कहैं छें एहवा निग्रंथ ते तत्व माहरा गुरू छें ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मनोगुप्ति की सज्झाय

१—मुनि मन नें वस्य करो, आश्रव नुं घर ते मन छे, ममत्व नो रस ते मन छे, मन थिर करे ते यती कहीइं ।

२—वक्र धोड़ा सरिखुं मन छै; मोहराजा नो मत्री ते मन छै, आरत रौद्र ए २ नुं खेत्र मन छै हे ज्ञाननिधान मुंनी तूं रोकजे ।

३—ए साधुनें प्रथम गुप्ति छइं, धर्म शुल्क ए २ ध्यान नो कंद ए गुप्ति, वस्तु धर्म चिंतन मां रम्या जे मुंनी ते पूर्णानन्द पणुं ए थकी साधें ।

४—योग ३ पुदगल मां भेलवें नवां कर्म नइं संचे ए रीतें योग मां वरतें चपल योगें ए आत्मिक धर्म नहीं ।

५—योग चपलता परसंगी पणुं ए साधन पक्षे नहीं माटें योग ३ चारित्र नें सहकारी पणें वरतावै निपुण मुनी ।

६—विकल्प सहित साधन ध्यानवाला ने गमे नहीं ते माटे निरविकल्पें अनुभव रस साधें ते आत्मानन्दी थाइं ।

७—जे व्यवहारथी रत्नत्रयी साधतां भेद पमाड़े क्लेश करावें ते साधन मेलुं जाणवुं, मन-वचन काय ए ३ गुणें उत्कृष्टवीर्यनी एकताइं जे साधें ते निर्मल आत्मानो आचार ।

८—उजल ध्यान श्रुत आलम्बन ए पण साधन नो दाव छै वस्तुधर्म ते आत्म धर्म मां उछरंग पणुं माटें गुणी अनें गुण एक सभावें छें ।

९—परनी साहाज्यें गुणें वरतें ते आत्म धर्म न कहीइं । साध्य मां रमी छें चेतना जेहनी एहवा साधु ते चित्त मां परनुं साहाज्य पणुं किम ग्रहें ।

१०—आत्म रूची आत्मा मां लय पाम्याँ स्याद्वाद शीलीइं अनन्त तत्व ध्यातां थकां ज्ञानी मुनी तत्वनी रमणता मां उपशम्या छै ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

११—अपवाद सेवन नी रुची कदापि मुनि न करें, मुक्ति ना रसिया मुनी, शक्ति अणगोपवी नें मोक्ष ना कारण सेवइं कर्म ना प्रचार ने निंदता थका।

१२—इंम करतां पोतानी आतमता शुद्ध पणे सिद्ध करें, पूर्णानंद नी ठकुराई पामें देव मां चंद्र ते कैवल्य पद साधता ते मुनी नइं नमीइं।

७—वचन गुप्ति की सज्झाय

१-वचन गुप्ति शुद्ध धरो, वचन ते कर्म रूप छें कर्म नें उदय आश्रित जे चेतना प्रवर्ते ते निश्चयें कष्ट रूप थाइं।

२--अने आत्मा तो वचने गम्य नथी, सिद्ध स्वरूपी छें माटें वचन थी अतीत छें अस्ति स्वभावें सत्तापणु आत्मा नुं छइं माटें भाषक भाव ते वचन तेथी आत्मा अतीत छें।

३—अनुभव रस चाखतां आत्म ध्यान करतां बोलवु ते बाधक भाव छें माटें मुनी सर्वथा मौन पणें रहें ते निश्चें वचनगुप्ति।

४- आश्रव ना वचन पलटावा सारू अनादि नो ढाल छें ते वारवा सारू मुनि सज्झाय ध्यान करें ते तो वचन समिति, अने सर्वथा न बोलवु ते वचन गुप्ति एहथी महारस उपजे छै।

५—भाषा पुद्गल नी वर्गणा नुं लेवु ते सहजें उपाधि पणु छै ते आत्म-वीर्य सखाई करतां स्ये कारणें वचन प्रेरें।

६—ज्यां सूधी वीर्य चेतना आत्म गुण ने पांमें त्यां सूधी संवर निर्जरा छें अनें आश्रव ते पर आयत पणे छैं।

७—इम जाणी ध्यानें थिर मुनी चपल वचन योग नो पलिमंथ न करें, मोक्ष पद साधतां निग्रंथ मुनी आणा अरथी छें।

८—शुद्ध परमात्मा नुं साध्य ते मोक्ष तेनुं साधन ते उछर्ग कें० निश्चय थो

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मौनपणुं छें एटलें वचन गुप्ति बार भेदें तप छें पण ते मध्ये व्युछर्ग के० काउसग तप ते श्रेष्ट छे स्या माटे जे वचनगुप्ति काउसग मां छें।

९—चोथें गुणठाणें अयोगी भाव साध्य कर्यो स्यामाटें जे समकित थयुं एटलें अयोगी पणुं नीयमा थस्यें कालांतरे वचन गुप्ति रूप थिरभाव ते अयोगी पणा नुं कारण छें।

१०—गुप्ति रुची मुनी गुप्तीइं रम्या पांच समीति छें ते गुप्ति नुं कारण छें ए रीतें करता थका थिरता नें वंछता थका तत्व पामें गुण नो संचय करें।

११—मुनि व्यवहार सेवें पण निश्चय नय नी दृष्टि चुकें नहीं इस्या मुनि नें निरंतर घणें भावें इन्द्र वंदे छें।

काया गुप्ति की सज्झाय

हे मुनि त्रीजी गुप्ति संभारो! जेहथी घणो आणंद उपजें मोहनी टलें घाती ४ गलें, अमंद के० मोटुं केवलज्ञान उपजइ।

२—घणी क्रिया कष्ट ते देवलोकें जाय शुभ क्रियाइं अने अशुभ क्रिया कष्टें अंते नरक गति पांमे माटें शुभ अशुभ किया बे भव नुं बीज छे। ते सारू काय नो व्यापार सर्व तजवो, स्यामाटे? जे काय योग चंचल भाव छे ते आश्रवनु मूल छइं, एक आत्मा अचल अविकारी छे।

३—पांच इंद्रीयोना २३ विषय तेनो ए धारक छें वलि काय योग तें नुं बांध हेतु दृढ छें काय योगे नवां कर्म ग्रहवाय ते माटें चपल देहछे ते थिर करवुं।

४—परसंगी अने आत्म वीर्य चलें जेहथी ते काययोग कहिइं अनें चेतन सत्ताइं परम अयोगी छे निर्मल थिर उपयोगी छें।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

५—जिहां लगें चल तिहा लगें कर्म बांध इम भगवती सूत्रों कह्यो ते सारू माहण जे मुनी ते आत्म तत्व नें रसें उजल ध्यान नें संगे रमें छै ।

६—आत्म धर्म नो वीर्य तेज सखाइ छें एवीर्य अचल छें सेहज नुं छें अप्रयासी छें त परभाव ने सखाई किम थाइं ए दीसाइं मुनि गुणना मंदिर थाइं ।

७—आत्म वीर्य थी गुण प्रगटें ते कहे छें खंति मुत्ति ऋजुता अकिंचनी शौच ब्रह्म इत्यादि गुण उपजें माटें विषम परिसह नी फोज हटाववा ए वीर्य परम सौंडीर ते हस्ति वा सिंह सरिखुं छें ।

८—कर्म पडल समुह नें टालवा रसिया आत्म ऋद्धि समृद्धिइं भर्यो देव मां चन्द्र तुल्य प्रभु आणा पालता मोटे गुणे वध्या मुनि नें वंदो ।

शिक्षा रूप सज्झाय

१—धर्म धुरंधर मुनि ते कहिइं जे ज्ञान चारित्रे भर्यो अने वलि इंद्रीना भोग तजी आत्म सुख ने भज्या भव बंधिखाणा थी उदवेग पाम्या ।

२—द्रव्य थी भाव थी शुद्ध श्रद्धा धरी शंकादि दोष तजी नें कारण योगें कार्य निपजें एहवां साधन आदरी नइं साध्य पदें संतोष धरी ।

३—गुण पर्याइं वस्तु नें परखता थका ग्रहण १ आसेवन २ ए बे शिक्षा ना भंडार छें आत्मा नो परणति आत्म शक्ति स्वरूपें परणमी छें पण तेनो विवहार करता थका विचरें ।

४—लोक संज्ञारूप दुगंछा वारता संयम वृद्धी करता, मूलगुण उत्तरगुण मां नजर राखता, आत्मशुद्धि धरता ।

५—पोते गीतारथ छे अथवा गीतारथ नी नीष्टाइं विचरता योग ३ वश्य करीने नव-नवा आगम भणतां थका शुद्ध उपयोगे रहे

६—द्रव्य भाव आश्रव रूप मेल टालता शुद्ध संयम पालता, रखरी मुनि नी क्रिया करता थका, कर्म विकार नें गालता ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

७—सामायक आदे ५ चारित्र नी गुण श्रेणिइ चढ़ते भावे रमता त्रण्य लोक थी न्यारा, त्रण्य लोक मां पूजनीक जेहना चरणकमल छे।

८—पोते अधिक गुणी छै, पोता सरिखा गुणी जे मुनि ते साथें मलता छै परमसमाधि ना निधान भवसमुद्र ना तारण पडें तरण जिहाज तुल्य छे।

९—समकितवंत छे संयम गुण ना ईच्छक ते संयम धरवा असमर्थ एहवा, त्रीजा संवेगपक्षी मुनि पक्ष भावे शोभता छे शुद्ध स्वरूपक छे।

१०—पोतानी प्रशंस्याइ माचें नहीं, एक मुनि गुणे राचे छें पणते संवेग पक्षी थका अप्रमत्त मुनि गीतार्थ नइ सिद्धान्त ना रहस्य, पूछवा सारू सेवा करइ छइ।

११—आगम नी सद्दहणा अनुमोदना सहित, गुणकारी संयमनी चालि शुद्ध व्यवहार थी साचवें आगल लाभ धारी ने।

१२...एहवा गीतारथ मुनी ते दुक्करकार जे महातपस्वी तथा अभिग्रही तथा सियलवंता ते थकी अधिका कह्या छे बृहत्कल्पें तथा व्यवहार सूत्रे उपदेश माला तथा भगवती सूत्रें गीतार्थ ना अधिकार।

१३...भाव थी संयम थानक फरस्या बिना चारित्र धर्म न कहीइ, जे प्रवचन नो रहस्य जाणे ते जूठ वचन बोले नहीं।

१४...लोक मां जस शोभा सारू पोता नो मत थापवा ने; लोक रीझवण सारू ज्ञान भणें क्रिया करें उग्र विहारें ते मुनि न कहिइ!

१५—एकान्तें बाह्य थी दया नो उपदेश दयें बहुश्रुतपणु न होइ, अलप ज्ञाने करी बगध्याने मूर्ख लोक ने ठगता फ़रे छे। ते घणो संसार भमस्ये दीन ते रांक पणु पामस्ये।

१६...अध्यात्म नी परणतिइ क्रिया कांड करस्यें देश काल जोइनें उचित आचार पालें, जिन आज्ञा विराधे नहीं तेहनो अवतार धन्य छ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१७---द्रव्य क्रिया तो निमित्त कारण छें धर्म मां लीन पणे रहेवुँ ते भाव-क्रिया छे आत्मा ने जे-जे अशे निरूपाधि पणुं थाइ ते अपूर्वलाभ माने ।

१८---द्वेषनी परणति नें निन्दे शुद्ध परणति रूप धर्म प्ररूपइ, अष्टांग योग ग्रन्थ तेहना परमार्थ प्रकाश करें ते मुनि कर्म ने टाले ।

१९...किरिया थोड़ी करे पण ज्ञानवाला मुनि लोक ने उपगार करे तेथी मोक्ष साधइ एहवा देव मां चन्द्र तुल्य गीतार्थ मुनि ना समूह नें वन्दतां जिन नाम कर्म बांधइ कृष्णनी परइ ।

* कलश *

१...ते प्राणी संसार तर्या, जे जैन मत अङ्गीकार कर्या, जे सुविहित मुनि ज्ञान अमृत रसना समुद्र थई ने किरिया करें ते संसार तर्या ।

२—ब्रह्मचर्य रूप बख्तर थकी जे पाखर्या छे ।

३...आत्मानन्द के ज्ञान आणंदे भर्या छे पांच आश्रवना द्वार घणाछे ते समस्त ढांक्या छे प्रधान संवर भावे संवर्या छे एहवा ।

४...ज्ञान धर्म अने तप धर्म पणे ध्यान मां वस्या एहवा ।

५...विनय गुण रत्न ना समुद्र तत्शिष्य श्री देवचन्द्र जी पण्डित बहुश्रुत पणुं पांमी ने साधुना गुण गाया ते थकी कर्म शत्रु ने शिथिल कर्या ।

६...मेरु तुल्य रूड़ा जिनालयें शोभित नगर मांहे प्रधान, गुण स्तुती ।

७...हे चतुर्विध संघ मुनि गुण नी तुमे स्तवना करज्यो, जे थकी लीलागंत भरत सरीखा राजा थास्यो ।

८---निर्मोही पणें शुद्ध ज्ञान तत्त्व साधना मां तत्पर इन्द्र सरिखा तीर्थंकर नी आणाइ विचर्या ते थकी जस सम्पदा विस्तरी छे जेहनी एहवा मुनि ने वंदन स्तवना करतां परम मंगल ते मोक्ष सुख जे सदाय सुख ते प्रगटइ ।

इति श्री अष्ट प्रवचन माता स्वाध्याय

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अष्ट प्रवचन माता

उत्तराध्ययन सुत्रम् का चौबीसवाँ अध्याय

(स्थानांग सूत्र में ५ समिति ३ गुप्ति का उल्लेख है। समवायांग में इनका संक्षिप्त विवरण भी है भगवती सूत्र के श० २५ उ० ६ में प्रवचनमाता का उलेख है पर उत्तराध्ययन में तो स्वतंत्र अध्ययन ही है अतः उसीका अनुवाद दिया जाता है।)

समिति और गुप्तिरूप आठ प्रवचन माताएँ हैं जैसे कि पाँच समितियां और तीन गुप्तियाँ॥१॥

ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणा समिति, आदानसमिति और उच्चारसमिति, तथा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और आठवीं कायगुप्ति हैं। यही आठ प्रवचन माताएँ हैं॥२॥

येआठ समितियाँ संक्षेप से वर्णन की गई हैं। जिन भाषित द्वादशांग रूप प्रवचन इन्हीं के अन्दर समाया हुआ है॥३॥

आलम्बन, काल, मार्ग और यतना इन चार कारणों की परिशुद्धि से संयत-साधुगति को प्राप्त करे या गमन करे॥४॥

ईर्या के उक्त कारणों में से आलंबन ज्ञानदर्शन और चारित्र हैं। काल, दिवस हैं; उत्पथव त्याग, मार्ग है॥५॥

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से यतना चार प्रकार की है। मैं तुम से कहता हूँ, तुम सुनो॥६॥

द्रव्य, से आँखों से देख कर चले। क्षेत्र से चार हाथ प्रमाण देखे। काल से- जब तक चलता रहे। भाव से-उपयोग पूर्वक गमन करे॥७॥

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रियों के विषयों और पाँच प्रकार के स्वाध्याय का परित्याग करके तन्मय होकर ईर्या को सम्मुख रखता हुआ उपयोग पूर्वक गमन करें ॥८॥

क्रोध, मान, माया, लोभ तथा हास्य, भय, मुखरता और विकथा में उपयुक्तता होनी चाहिए ॥ ९ ॥

बुद्धिमान् संयत पुरुष उक्त आठ स्थानों को परित्याग कर, यथा समय परिमित और असावद्य भाषा को बोले ॥१०॥

गवेषणा, ग्रहणैषणा और परिभोगैषणा तथा आहार, उपधि और शय्या इन तीनों की शुद्धि करे ॥११॥

संयम शील, यति प्रथम एषणा में उद्गम और उत्पादन आदि दोषों को शुद्धि करे। दूसरी एषणा में-शंकितादि दोषों की शुद्धि करे। तीसरी एषणा में पिंडशय्या, वस्त्र और पात्र आदि की शुद्धि करे ॥१२॥

ओघोपधि और औपग्रहिकोपधि तथा दो प्रकार का उपकरण-इनका ग्रहण और निक्षेप करता हुआ वह साधु वक्ष्यमाण विधि का अनुसरण करे अर्थात् इनका ग्रहण और निक्षेप विधिपूर्वक करे ॥१३॥

संयमी साधु आंखों से देखकर दोनों प्रकार की उपाधि का प्रमार्जन कर तथा उसके ग्रहण और निक्षेप में सदा समिति वाला होवे ॥१४॥

मल-विष्टा, मूत्र, मुख का मल, नासिका का मल, शरीर का मल, आहार उपधि शरीर और भी इसी प्रकार के फेंकने योग्य पदार्थ, इन सब को विधि यतना से फेंके ॥ १५ ॥

१ आता भी नहीं और देखता भी नहीं। २ आता नहीं परन्तु देखता है। ३ आता है परन्तु देखता नहीं। ४ आता भी है और देखता भी है ॥ १६ ॥

अनापात जहाँ लोग न आते हों। असंलोक लोग न देखते हों, पर जीवों

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

का उपघात करनेवाला न हो। सम अर्थात विषम न हो ओर तृण्णादिसे आच्छादित न हो तथा थोड़े काल का अचित्त हुआ हो, ऐसे स्थान में उच्चार आदि त्याज्य पदार्थों कों व्युत्सर्जन करे, यह अग्रिम गाथा के साथ अन्वय करके अर्थ करना ॥ १७ ॥

जो स्थान विस्तृत हो, बहुत नीचे तक अचित्त हो, गामादि के अति समीप न हो, मूषक आदि के बिलों से रहित हो तथा त्रस प्राणी और बीज आदि से वर्जित हो, ऐसे स्थान में उच्चार आदि का त्याग करे ॥ १८ ॥

ये पाँच समितियाँ संक्षेप से वर्णन की गयी हैं। इस के अनन्तर तीनों गुप्तियों का स्वरूप अनुक्रम से वर्णन करता हूं ॥ १९ ॥

सत्या, असत्या, उसी प्रकार सत्या मृषा और चतुर्थी असत्यामृषा ऐसे चार प्रकार की मनोगुप्ति कही है ॥ २० ॥

संयम शील मुनि संरम्भ, समारम्भ और आरम्भमें प्रवृत्त मन को निवृत्त करे—उस की प्रवृत्ति को रोके ॥ २१ ॥

सत्यवाग् गुप्ति, मृषावागुप्ति, तद्वत सत्यामृषावाग्गुप्ति और चौथी असत्या-मृषावाग्गुप्ति, इस प्रकार वचन गुप्ति चार प्रकारसे कही गयी है ॥ २२ ॥

संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवृत हुए वचन को संयमशील साधु निवृत करे ॥ २३ ॥

स्थान में, बैठने में तथा शयन करने में, लंघन और प्रलंघन में एवं इन्द्रियों को शब्दादि विषयों के साथ जोड़ने में यतना रखनी—विवेक रखना चाहिए ॥ २४ ॥

प्रयत्नशील यति संरम्भ, समारम्भ, और आरम्भ में प्रवृत हुई काया-शरीर को निवृत करे अर्थात आरम्भ समारम्भ आदि में प्रवृत न होने दे ॥ २५ ॥

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ये पाँचों समितियाँ चारित्र को प्रवृति के लिए कही गयी है और तीनों गुप्तियाँ शुभ और अशुभ सर्व प्रकार के अर्थों से निवृति के लिए कथन की गयी हैं ॥२६॥

जो मुनि इन प्रवचन माताओं का सम्यग् भाव से आचरण करता है, वह पण्डित सर्व संसार चक्र से शीघ्र ही छूट जाता है। ऐसा मैं कहता हूँ ॥२७॥

समाप्त

:—:—:

दि० आचार्य शुभचद्र रचित

ज्ञानार्णव में अष्ट प्रवचनमाता

[श्वेताम्बर साहित्य के अतिरिक्त दि० साहित्य में भी अष्ट प्रवचन माता का विवरण मिलता है, कुन्दकुंद के नियमसारादि ग्रन्थों में संक्षिप्त विवेचन है। ज्ञानार्णव में कुछ विस्तृत विवेचना होने से उसके संबन्धित श्लोकों का अनुवाद दिया जा रहा है।]

संयम सहित है आत्मा जिनका ऐसे सत्पुरुषों ने ईर्ष्या; भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण और उत्सर्ग ये हैं नाम जिनके ऐसी पांच समितियें कही हैं।

मन, वचन काय से उत्पन्न अनेक पापसहित प्रवृतियों का प्रतिषेध करने वाला प्रवर्तन, अथवा तीनों योग (मन, वचन, काया की क्रिया) का रोकना, ये तीन, गुप्तियें कही गई हैं।

जो मुनि प्रसिद्ध सिद्धक्षेत्रों का तथा जिन प्रतिमाओं को वंदने के लिए तथा गुरु, आचार्य वा जो तप से बड़े हों, उनकी सेवा करने के लिए गमन करता हो उसके, तथा दिन में सूर्य की किरणों से स्पष्ट दीखनेवाले, बहुत लोग जिसमें गमन करते

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

हों ऐसे मार्ग में दया से आर्द्र चित्त होकर जीवों की रक्षा करता हुआ धीरे-धीरे गमन करे, उस मुनि के तथा चलने से पहिले ही जिसने युग (जूड़े) परिमाण (चार हाथ) मार्ग को भले प्रकार देख लिया हो और प्रमादरहित हो ऐसे मुनि के इर्यासमिति कही गई है।

धूर्त (मायावी) कामी, मांसभक्षी, चौर, नास्तिकमती, चार्वाकादि से व्यवहार में लाई हुई भाषा तथा संदेह उपजानेवाली, व पाप संयुक्त हो ऐसी भाषा बुद्धिमानों को त्यागनी चाहिये। तथा वचनों के दशदोष रहित सूत्रानुसार साधु—पुरुषों के मान्य हो ऐसी भाषा को कहने वाले मुनि के उत्कृष्ट भाषासमिति होती है।

कर्कश, परुष, कटु, निष्ठुर परकोपी, छेद्यांकुरा, मध्यकृशा; अतिमानिनी भयंकरी, और जीवों की हिंसा कराने वाली, ये दश दुर्भाषा हैं। इनको छोड़े तथा हितकारी, मर्यादासहित असंदिग्ध वचन बोले उसी मुनि के भाषासमिति होती है।

जो उद्गमदोष १६, उत्पादन दोष १६, एषणादोष १०, धुआं, अंगार प्रमाण संयोजन ये ४ चार मिलाकर ४६ दोष रहित तथा मांसादिक १४ मलदोष और अन्तराय शंकादि से रहित, शुद्ध, काल में पर के द्वारा दिया हुआ, बिना उद्देशा हुआ और याचना रहित आहार करे उस मुनि के उत्तम एषणा समिति कही गई है। इन दोषादिकों का स्वरूप (आचार वृति) आदिक ग्रन्थों से जानना।

जो मुनि शय्या, आसन; उपधान, शास्त्र और उपकरण आदि को पहिले भले प्रकार देखकर फिर उठावे अथवा रखे उसके तथा बड़े यत्न से ग्रहण करते हुए के तथा पृथ्वी पर धरते हुए साधु के अविकल (पूर्ण) आदान निक्षेपण समिति स्पष्टतया पलती है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जीव रहित पृथ्वी पर मल, मूत्र, श्लेष्मादिक को बड़े यत्न से (प्रमादरहितता से) क्षेपण करने वाले मुनि के उत्सर्ग समिति होती है ।

राग द्वेष से समस्त संकल्पों को छोड़कर जो मुनि अपने मन को स्वाधीन करता है और समता भावों में स्थिर करता है तथा-सिद्धान्त के सूत्र की रचना में निरन्तर प्रेरणारूप करता है उस बुद्धिमान मुनि के सम्पूर्ण मनोगुप्ति होती हैं ।

भले प्रकार संवररूप (वश) करी है वचनों की प्रवृति जिसने ऐसे मुनि के तथा समस्यादि का त्याग कर मौनारूढ़ होने वाले महामुनि के वचनगुप्ति होती है ।

स्थिर किया है शरीर जिसने तथा परिषह आजाय तो भी अपने पर्यंकासन से ही स्थिर रहै, किंतु डिगे नहीं उस मुनि के ही कायगुप्ति मानी गई है, अर्थात् कही गई है ।

पांच समिति और तीन गुप्ति ये आठों संयमी पुरुषों की रक्षा करने वाली माता है तथा रत्नत्रय को विशुद्धता देने वाली हैं इन से रक्षा किया हुआ मुनियों का समूह दोषों से लिप्त नहीं होता । (अष्टादश प्रकरण श्लोक ३ से १९)

:—:—:

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूपसमाधिनिष्ठ अप्रमत्तअध्यात्म योगी श्री लाभानन्द जी
अपरनाम आनन्दघनजी विरचित—

पांच समिति---ढालो

१ इर्या-समितिः—

दोहा— पंच महाव्रत आदरी, आतम करे विचार ।
अहो ! अहो ! हुं थयो प्रत्यक्ष, धन-धन मुझ अवतार ॥ १॥

ढाल-१ चितोडा राजा...ए देशी...

विनति अवधारो रे, इरियाए चालो रे
शक्ति संभालो रे, आत्म स्वभावनी रे, १
इरिया ते कहिये रे, सुमति सुं भेट लहिये रे,
(निज लक्ष गहिये रे, गमनागमन महिं रे) २
सुमति जब भाली रे, तब लागी प्यारी रे,
पुंठ तव वाली रे, कुमति संगथी रे ३
द्रव्यथी पण सार रे, किलामणा लगार रे,
रखे नवि ऊपजे रे, हवे परप्राण ने रे ४
मुनि मारग चालो रे, द्रव्य-भावसुं म्हालो रे,
आतम उगारो रे, भव-दव-चक्रथी रे ५
एम मुनिगुण पामी रे, परभावने वामी रे,
कहे हवे स्वामी रे, आनन्दघन ते थयों रे ६

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

२ भाषा-समितिः—

ढाल २ राय कहे राणी प्रते, सुणो कामिनी.....ए देशी

बीजी समिति सांभलो, जयवन्ताजी
भाषा की इण नाम रे गुणवन्ताजी !

भाषे भाषण स्वरूप नुं ज०, रूपी पदारथ वाम रे गु० १
निज स्वरूप रमणें चड्या ज० नवि परनो परचार रे गु०
भाषासमितिथी सुख थयुं ज०, ते जाणे मुनि सार रे गु० २
ज्ञानवन्त निज ज्ञानथी ज०, अनुभव भाषक थाय रे गु०
भाषासमिति स्वभावथो ज०, स्व-पर विवेचन थाय रे गु० ३
हवे द्रव्यथी पण महामुनि ज०, सावद्य वचननो त्याग रे गु०
सावद्यें विरम्या जे मुनि ज०, ते कहिये महाभाग रे गु० ४
पर-भाषण दूरे करी ज०, निज स्वरूप ने भाष रे गु०
आनन्दघन पद ते लहे ज०, आतम ऋद्धि उल्लास रे गु० ५

३ एषणा-समिति;—

ढाल ३ राग-बँगलो राजा नहीं नमे.....ए देशी

त्रीजी समिति एषणा नाम, तिणे दीठो आनन्दघन स्वाम
चेतन ! सांभलो
जब दीठो आनन्दघन वीर, सहज स्वभावे थयो छे धीर
गयो आमलो— १

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

वीर थई अरि पुंठे धाय, अरि हतो ते नाठो जाय चे०
वीररी सन्मुख कोई न थाय, रत्नत्रयसुं मलवा जाय चे० २
अरिनुं बल हवे नथी कांइ रेष, निज स्वभावमां म्हाल्यो विशेष चे०
निरखण लागो निजघरमांय, तव विसामो लीधो त्यांय चे० ३
हवे परघरमां कदीय न जाऊं, पर ने सन्मुख कदीय न थाऊं चे०
एम विचारी थयो घर राय, तव परपरिणति रोती जाय चे० ४
मुनिवर करुणा-रस भण्डार, दोष रहित हवे ले छे आहार चे०
द्रव्य थकी चाले छे एम, परपरिणति नो लीधो नेम चे० ५
द्रव्य-भावसुं जे मुनिराय, समिति स्वभाव मां चाल्या जाय चे०
आनन्दघन प्रभु कहिए तेह, दुष्ट विभावने दीधो छेह चे० ६

४ आदान–निक्षेपन--समितिः—

ढाल (४)जगत गुरु हीरजी——ए देशा

चौथी समिति आदरो रे, आदान-निखेवणा नाम
आदान ते जे आदर करे रे, निज स्वरूप ने तेम—
स्वरूप गुण धारजो रे, धारजो अक्षय अनन्त
भविक ! दुख वारजो रे १
निखेवणा ते निवारवुं रे, पर-वस्तु वली जेह
तेह थकी चित्त वालवुं रे, करवा धर्मसुं नेह, स्व २

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्म नेह जब जागियो रे, तब आनन्द जणाय
प्रगट्यो स्वरूप विषे हवे रे, ध्याता ते ध्येय थाय, स्व० ३
अज्ञान व्याधि नसाडवा रे, ज्ञान- सुधारस जेह
आस्वादन हवे मुनि करे रे, तृप्ति न पामे तेह, स्व० ४
स्वरूपमां मुनिवरा रे, समितिसुं धरे स्नेह
सुमति-स्वरूप प्रगटावीने रे, दीधो कुमतिनो छेह, स्व० ५
काल अनादि-अनन्त नो रे, हतो सलंगण भाव
ते पर पुद्गल थी हवे रे, विरक्त थयो स्वभाव, स्व० ६
द्रव्य भाव दोय भेदथी रे, मुनिवर समिति धार
आनन्दघन पद साधशे रे, ते मुनि गुणभण्डार, स्व० ७

५ पारिठावणिया समितिः—

ढाल—५—रूडा राजवी, ए देशी

पंचमी समिति मुनिवर ! आदरो रे,
उन्मारगनो परिहार रे, सुधा साधु जी !
मुनि मारग रूडी परे साधजो रे,
पर छोड़ी ने निज संभार रे. सुधा० १
पारिठावणिया नामे वली जे कह्युं रे,
ते तो परिहरवो परभाव रे. सुधा०

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आदर करवो निज स्वभावनो रे,
ए तो अकल स्वरूप कहेवाय रे. सुधा० २
पर पुद्गल मुनि परठवे रे,
विचार करी घट मांय रे, सुधा०
लोक संज्ञा ने वली परिहरे रे,
गतिचार पछी वोसराय रे. सुधा० ३
अनादिनो संग वली जे हतो रे,
तेनो हवे करे मुनि त्याग रे, सुधा०
विकल्प—संकल्प ने टालवा रे,
वली जेह थया उजमाल रे. सुधा० ४
पर आकर्षण मुनि परठवे रे,
ते जाणीने अनाचार रे, सुधा०
आचार ने वली मुनि आदरे रे,
कर्त्ता कार्यस्वरूपी थाय रे. सुधा० ५
खट्—द्रव्य नुं जाणपणुं कह्युं रे,
जेणे जाण्यो आप स्वभाव रे, सुधा०
स्वभावनो कर्त्ता वली जे थयो रे,
ते तो अनवगाही कहेवाय रे, सुधा० ६

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सुमति सुं हवे मुनि म्हालता रे,
चालता समिति स्वभाव रे, सुधा०
कुमति सुं दृष्टि नवि जोड़ता रे,
वली तोड़ता जेह विभाव रे. सुधा० ७

उपसंहार

पर परिणति कहे सुण साहिबा रे,
तमे मुझने मूकी केम रे, सुधा०
कहो मुनि कवण अपराध थी रे,
मुझने छंछेडी एम रे. सुधा० ८
में म्हारो स्वभाव नवि छांड़ियो रे,
नथी म्हारो कांइ विभाव रे, सुधा०
पंचरंगी जे म्हारूं स्वरूप छे रे,
ते ने आदरूं छुं सदाकाल रे. सुधा० ९
वर्ण गंध रस फर्स छोडुं नहिं रे,
तो श्यो अवगुण कहेवाय रे. सुधा०
कदि अवर स्वभाव न आदरूं रे,
सडण पडण विधंस न छंडाय रे. सुधा० १०

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्ध जीवोथी अनन्त गुण कह्या रे,
म्हारा घरमां जे चेतनराय रे, सुधा०
ते सघला म्हारे वश थई रह्या रे,
तो तुमथी छोड़ी केम जवाय रे. सुधा० ११
तब मुनिवर कहे कुमति सुणो रे,
तारूं स्वरूप जाण्युं दगाबाज रे, कुडी कुमति जी !
तारा स्वरूप मां जिम तुं मगन छे रे,
म्हारा स्वरूपे थयो हुं आज रे. कुडी० १२
मारूं स्वरूप अनन्त में जाणियुं रे,
ते तो अचल अलख कहेवाय रे, कुडी०
सुमति थी स्वभाव-घरे रमुं रे,
तारा सामुं जोयुं केम जाय रे, कुडी० १३
तारे-म्हारे हवे नहिं बने रे,
तुम तुम्हारे घरे हवे जाओ रे, कुडी०
आज लगी हुं बालपणे हतो रे,
हवे पंडित-वीर्य प्रगटाय रे. कुडी० १४
सुमतिसुं में आदर मांडियो रे,
ए तो बहु गुणवन्ती कहेवाय रे, कुडी०

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सुमतिना गुण प्रगटपणे रे,
में तो लीधा उपयोग मांय रे. कुडी० १५
सांभल सुमतिना गुण कहुँ रे,
जे अमल अखण्ड कहेवाय रे, कुडी०
स्थिरतापणुं सुमति मां घणुं रे,
तुझ मां तो अस्थिरता समाय रे कुडी० १६
तारा सुख तो में हवे जाणिया रे,
छे किंपाक-फल सम हाल रे कुडी०
तेथी ते विभाव कहेवाय छे रे,
पुण्य-पाप नाटक नो ख्याल रे. कुडी० १७
ज्ञानो एहने सुख नवि कहे रे,,
सुख जाण्युं में एक स्वभाव रे, कुडी०
तारी पुंठे पड्या ते आंधला रे,
भव कूपमां थया गरकाव रे, कुडी० १८
तारूँ स्वरूप में बहु जाणियुं रे,
जड़ संगे तुं जड़ कहेवाय रे; कुडी०
जड़पणुं प्रगट में जाणियुं रे,
तुं तो पर पुद्गल मां शमाय रे. कुडी० १९

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तेनो विवरो प्रगट सांभलो रे,
आ संसार समुद्र अथाह रे, कुडी०
तृष्णा-जल ते मध्ये घणुं रे
पण पीधे तृप्ति नव थाय रे, कुडी० २०
ते समुद्रनो अधिष्ठायक वली रे,
ते नामे मोह-भूपाल रे, कुडी०
तेना मित्र प्रधान वली पांच छे रे,
ते तले तेवीस छडीदार रे, कुडी० २१
राजधानी ते तेवीसने भालवी रे,
तेनी खबर राखे जण पंचरे, कुडी०
राजधानी एवी ते मेलवी रे,
धर्मरायनुं लुंटे धन—संच रे, कुडी २२
बाह्यधर्मी ज एने आदरे रे,
तेने भोलवे सवि छडिदार रे, कुडी०
वश करी सोंपे मोहरायने रे,
मोह करावे प्रमाद प्रचार रे, कुडी० २३
पछी नाखे ते नरक-निगोदमां रे,
तिहां काल अनन्तो गुमाव रे, कुडी०
दृढधर्मी मात्र एथी नवि चले रे,
जेणे कीधा क्षायकभाव रे, कुडी० २४

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रमादीने मोह पीडे घणुं रे,
अप्रमादी घरे नवि चार रे, कुडी०
तिणे पंच महाव्रत में आदर्या रे,
वली छोड्या सर्व अनाचार रे कुडी० २५
आचारथो हुं हवे नवि चलुं रे,
सुण मुझ हृदय ! विरतंत रे, कुडी०
कुमतिजी ! कहुं तुमने एटलुं रे,
म्हारा साधर्मी जीव अनन्त रे, कुडी० २६
ते सर्वने तें दासपणुं दियो रे,
ते साले छे मुझ चित्त मांय रे, कुडी०
शुं कीजें ते—पुंठ नवि फेरवे रे,
तो पण मुझने दया थाय रे, कुडी० २७
तेथी हुँ देशना वहु विध करूं रे,
जिहां चाले म्हारो प्रयास रे, कुडी०
चेतनजी ने बहुपरें प्रीछवुं रे,
तेने बतावुं छुं स्थिरवास रे, कुडी० २८
ते तो तारे वश फरी नवि होवे रे,
तने वोसरावी शिव जाय रे, कुडी०
धर्मरायनी आणने अनुसरे रे,
ते तो आनन्दघन महाराय रे, कुडी०२९
तिहां तुझथी नवि पहुँचाय रे.

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अभय जैन ग्रन्थमाला के महत्वपूर्ण प्रकाशन :—

१—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह	...	५)
२—बीकानेर जैन लेख संग्रह	...	१०)
३—दादा जिनकुशल सूरि	...	...
४—युगप्रधान श्री जिनदत्त सूरि	...	१)
५—समय सुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि	...	५)
६—ज्ञानसार ग्रन्थावली	...	२)५०

सादूल राजस्थान रिसर्च इन्स्टीट्यूट के प्रकाशन :—

१—विनयचन्द्र कृति कुसुमाञ्जलि	...	४)
२—पद्मिणी चरित्र चउपई	...	४)
३—धर्मवर्द्धन ग्रन्थावली	...	५)
४—सीताराम चउउई [समय सुन्दर]	...	४)
५—समय सुन्दर रास पञ्चक	...	३)
६—जिनराज सूरि कृति कुसुमाञ्जलि	...	४)
७—जिन हर्ष ग्रन्थावली	...	५)

श्रीमद् देवचन्द्र ग्रन्थावली

चौवीसी वीसी स्तवन	...	।)२५
सज्झाय संग्रह भाग १--२	...	१)
शांत सुधारस	...	...

उपाश्रय कमेटी प्रकाशन :—

राई देवसी प्रतिक्रमण	...	।)३१
पूजा संग्रह	...	२)५०

मिलने का पता :—**नाहटा ब्रदर्स**

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद् देवचन्द्र जी की गुणस्तुति--

खरतर गच्छ मांही थया रे लोल, नामे श्री देवचंद रे सोभागी
जैन सिद्धांत शिरोमणि रे लोल, धैर्यादिक गुण वृन्द रे सोभागी

[पद्मविजय कृत उत्तमविजय निर्वाण रास]

"पंचम काले देवचन्द जी, गंधहस्ति जे तुल्य ।
प्रभावक श्री वीर नो, थयो अधुना बहु मूल्य ॥"

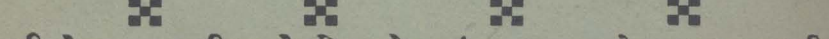

श्री देवचन्द मुनीन्द्र ते जेन नो, स्तंभ सदृश थयो सत्य ! सुज्ञानी

[कवियण रचित देवविलास]

ज्ञान दर्श चारित्र--व्यक्त रूपाय योगिने
श्रीमते देवचंद्राय, संयताय नमो नमः ॥१॥
द्रव्याणुयोग गीतार्थो व्रताचार प्रपालकः
देवचन्द समः साधु, रर्वाचीनो न दृश्यते ॥२॥
आत्मोद्गारामृतं यस्य, स्तवनेषु प्रदृश्यते
त्रिविध ताप तप्तानां, पूर्ण शांति प्रदायकम् ॥४॥
आत्म शमा मृतस्वादी, शास्त्रोद्यान विहारवान्
यत्कृत शास्त्र पाथौधौ ... कुर्वन्ति सज्जना ॥६॥
सिद्धां... रागि शेखरः
माध्य... त्यं नमो नमः ॥७॥

[...कृत देवचन्द्र स्तुति]

Serving JinShasan
112430
gyanmandir@kobatirth.org

श्री हरिप्रसाद उपाध्याय द्वारा प्रभाकर प्रेस,
७४, पथरियाघाट स्ट्रीट, कलकत्ता-६ से मुद्रित ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org